वर्ष ६, अंक १२

श्रीकृष्णाय नमः

भाद्रपद पूर्णिमा १९७६

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

अनसूयाके पद गहि सीता । मिली बहोरि सुशील विनीता ॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, भाद्रपद पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक १२ पूर्ण संख्या ७२

वेदोपदेश

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्व रूपाणां मनो गृभायौषधे ॥ १ ॥

जो अन्दर हो वही बाहर हो और जो बाहर हो वही अन्दर हो। हे दोषों को दूर करने वाले! अनेक सुन्दर रूप वाली कन्याओं के मन का विचार करो॥ १ ॥

एवमगन् पतिकामा जनिका मोहमागमम्।
अश्वः कदिक्रदद्यथा भगोनाहं सहागमम् ॥ २ ॥

यह पति की इच्छा करने वाली आ गई। स्त्री की इच्छा करने वाला मैं आया हूं। जैसा हिन हिनाने वाला घोड़ा बलवान् होता है, वैसा भाग्य धन के साथ में आया हूं॥ २ ॥

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खलवां इव ॥ ३ ॥

सब क्रिमियों का नाश करने वाले इस इन्द्र का जो बड़ा पत्थर है उससे मूँगी को पत्थरों द्वारा जैसा पीसते हैं वैसे क्रिमियों को नष्ट करता हूं ॥ ३ ॥

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्त निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ ४ ॥

उदय होने वाला सूर्य क्रिमियों का नाश करे अस्त होने वाला सूर्य किरणों से क्रिमियों का नाश करे । जो क्रमि भूमि और आकाश के अन्दर हैं ॥ ४ ॥

अहं गृभणामि मनसा मनांसि मम चित्त मनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ ५ ॥

मैं अपने मन से आप के मनों को आकर्षित करता हूं । ये अपने चित्तों से मेरे चित्त के अनुकूल रहें । मैं आपके अन्तःकरणों को वश में करता हूं । आप भी मेरे अनुगामी मार्ग से जाइए ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

कथा पीपा जी की ।

पीपा जी गागरौनगढ के राजा पहले दुर्गा के सेवक थे । एकबार कुछ भगवद्भक्त आ निकले उनको इन्होंने उनकी इच्छानुसार रसोई की सामग्री दिलादी । उन्होंने रसोई बना कर भगवत् का भोग लगाया और भगवत् से प्रार्थना की यह राजा भगवद्भक्त हो जाय । रात के स्वप्न में किसी ने राजा को शिक्षा दी कि तू कैसा मतिमन्द है कि भगवत् से विमुख होकर उद्धार चाहता है । राजा ने उसी दिन से भगवद्भक्ति करना आरंभ किया और संसार की सब रचना इनको असार दिखायी देने लगी । दुर्गा महारानी साक्षात् हुई और राजा के पूछने पर रामानन्द को गुरु करने की शिक्षा देकर अन्तर्धान हो गयीं । पीपा जी रामानन्द जी के दर्शन के लिये ऐसे व्याकुल हुए कि लोगों को सन्देह हुआ कि यह पागल तो नहीं होगये । जब पीपा जी काशी में रामानन्द जी के पास आये तो उन्होंने यह कह

कर निराश कर दिया कि यह त्यागियों और विरक्तों का स्थान है, यहां राजा का क्या काम है। पीपा जी सब छोड़ छाड़ कर लंगोटी लगाके गये और कहने लगे कि अब तो मैं त्यागी हो गया हूं, मुझे स्वीकार कीजिये। रामानन्द जी ने आज्ञा दी कि कुवें में गिर पड़ो तुरन्त ही कुवें में गिरने को दौड़े रामानन्द जी के चेलों ने इन्हें पकड़ लिया और रामानन्द जी के सामने ले आये। रामानन्द जी ने इनको शिष्य किया और कृपा पूर्वक भगवद्भक्ति का उपदेश देकर कहा कि अपने घर जाओ और साधु सेवा करते रहो, एक वर्ष पीछे साधु सेवा करते हुए सुनेंगे, तो हम भी भक्तों सहित तुम्हारे घर आवेंगे।

पीपा जी घर आये और इन्होंने ऐसी साधु सेवा और भगवद्भक्ति की कि उसका वर्णन नहीं हो सका। पीछे पीपा जी ने रामानन्द जी को पत्र लिखा कि अपने वचन की पालना कीजिये और पधारिये। रामानन्द जी कबीर, रैदास आदि चालीस चेलों सहित चले, जब नगर के निकट पहुंचे तब पीपा जी बड़े भाव से मर्यादा पूर्वक समाज सहित रामानन्द जी को घर पर लाये और ऐसी सेवा की कि जिसका फल शीघ्र ही प्राप्त हुआ। कुछ दिन पीछे रामानन्द जी ने द्वारका चलने की इच्छा की। पीपा जी यह सुन कर बहुत व्याकुल हुए और इनके हृदय की प्रीति देख कर रामानन्द जी ने आज्ञा की कि चाहो यहां रहो और चाहो त्यागी होकर साथ चलो। पीपा जी तुरन्त सब राज्य छोड़ कर साथ हो लिये। बारह रानियाँ भी साथ चलीं। उनमें से ग्यारह को समझा बुझा कर पीपा जी ने घर लौटा दिया। छोटी रानी सीता नाम की थी, जब उसने कमली पहिनने और नंगी रहने को भी अंगीकार कर लिया, तब रामानन्द जी के सौगन्द दिलाने से साथ लेकर चले, एक ब्राह्मण भी साथ हुआ, मने करने से बिष खा कर मर गया, भगवच्चरणामृत पीने से जी गया और घर लौट आया, समाज द्वारका पहुंचा और दर्शन यात्रा करके काशी जी को लौट दिया, पीपा जी आज्ञा लेकर वहां ही रह गये।

एक दिन श्रीकृष्ण स्वामी के दर्शन की उन को इच्छा हुई, समुद्र में कूद पड़े, दिव्य द्वारका में पहुंच गये, दर्शन पाया, सात दिन रहे, भगवत् की आज्ञा से फिर समुद्र के किनारे जल से सीता सहित निकले, कपड़े भीगे, शरीर सूखा देख कर सब लोगों ने आश्चर्य माना। पीपा जी को भगवत् ने जो छाप दी थी, वह इन्होंने पुजारियों को दे दी। और कह दिया कि जिसके शरीर पर यह छाप लगायी जायगी, वह भगवत् को प्राप्त होगा, फिर जन्म न पायगा। जब यह प्रताप पीपा जी का विख्यात हुआ, तो लोगों की बड़ी भीड़ रहने लगी। यह देख कर यह वहां से चल दिये, जब छः मंजिल चल कर आये, तो इनको पठानों की सेना मिली। सीता जी को सुन्दरी देख कर पठानों ने छीन लिया। सीता ने भगवान् का स्मरण किया, तुरत भगवत् आये और दुष्टों को दण्ड देकर सीता को आनन्द से लेआये।

पीपा जी ने सीता से कहा कि तुम्हारे कारण से बहुत उत्पात होते हैं, अब तुम घर चली जाओ। सीता ने उत्तर दिया कि महाराज! आपके उपाय करने से कौन सा उत्पात शान्त हुआ है कि जिसके कारण से भजन में भंग हुआ हो। प्रभु ने किस समय सहाय नहीं की है, इस बात की परीक्षा मुझे और आपको अच्छे प्रकार हो चुकी है, फिर भी आप ऐसी शिक्षा क्यों देते हैं? पीपा जी इस दृढ़ निश्चय से प्रसन्न हुए, दूसरी राह से चले। मार्ग में एक व्याघ्र मिला, पीपा जी ने उसे चेला करके भगवद्भक्ति का उपदेश दिया। उसने भक्ति अंगीकार

की। अब तक वहाँ का व्याघ्र साधु, ब्राह्मण और गौ को नहीं मारता।

वहां से चल कर पीपा जी एक ग्राम में आये। वहां शेषशायी महाराज का मन्दिर था। बाजार में एक के हाथ में लाठी देख कर पीपा जी ने उससे लाठी मांगी। वह कहने लगा कि जंगल में से काट लाओ। पीपा जी ने सब लाठियों को हरी और सपत्र कर दिया कि जंगल हो गया। पीपा जी एक लाठी काट कर चीधर नामक भक्त के घर आये, उसके घर में कुछ नहीं था। चीधर स्त्री को कोठरी में नंगी बैठा कर उसका लेहंगा बेच कर रसोई का सामान लाया। रसोई तैयार हुई, भोग लगे पीछे जब चीधर भक्त को उनकी स्त्री सहित भोजन करने को बुलाया, तो चीधर ने कहा कि आप भोजन करें, शेष प्रसाद वह भोजन करेगी। तब पीपा जी ने सीता को भेजा, मालूम हुआ कि कोठे में है। सीता ने कारण पूछा तो उत्तर मिला कि तन पर वस्त्र होना या न होना परमानन्द का कारण नहीं, भगवद्रूप का चिन्तवन और साधु सेवा परमानन्द का सार है, उनका होना अवश्य योग्य है, सीता ने सब हाल जान लिया और उनके भाव के आगे अपनी भक्ति को तुच्छ समझा। पश्चात् सीता अपने अङ्ग के वस्त्र में से आधा देकर स्त्री को बाहर लाई और सब ने मिल कर भोजन किया। पश्चात् सीता और पीपा जी उनको सेवा उचित समझ कर बाजार में जा बैठे। सीता का सुन्दर रूप देख कर बहुत लोग जमा हो गये परन्तु कोई आंख उठा कर न देख सके। लोगों ने पूछा कि तुम कौन हो, तो उत्तर दिया कि बारमुखी हैं, घर बार कुछ नहीं है। लोग सुन कर चुप हो रहे। कोई हंसी की बात न कह सका। सब ने नाज, मोहर, रुपये भेट किये। पीपा जी ने सब चीधर भक्त के घर पहुंचा दिये। वे स्त्री पुरुष ऐसे भगवद्भक्त और वैराग्यवान् थे। कि उसी घड़ी सब भगवद्भक्तों को दे दिया और आप जैसे थे, वैसे ही रह गये।

पीपा जी विदा होकर राह का कष्ट झेलते हुए ठोड़ा शहर में टिके, तालाब पर स्नान करने गये। वहां उन्होंने मोहरों से भरा हुआ एक घड़ा देखा और रात को सीता से सब वृत्तान्त कहा। चोर सुन रहे थे, उन्होंने तालाब पर जाकर देखा, तो घड़े में एक बड़ा सर्प पाया। चोरों ने विचार किया कि इस सांप से इसको कटवाना चाहिये, क्योंकि इसने हमारे कटवाने को झूंठ कहा है। ऐसा विचार कर चोर उस घड़े को लेकर पीपा जी के स्थान पर डालकर चले गये। उस घड़े में पांच २ तोले की सात सौ बीस मोहरें थीं। पीपा जी ने उनका सामान मंगवा कर तीन दिन में भंडारा करके साधुओं को खिला दिया। सूरसेन उस देश का राजा था, पीपा जी का नाम सुन कर दर्शन करने को आया, चरणों में पड़ कर विनय करने लगा कि मुझ को भी अपने जैसा बना कर मंत्र देकर चेला करलो। पीपा जी ने कहा कि अपनी सम्पत्ति और रानी आदि सब हमारे भेट करो। राजा ने तुरन्त वैसा ही किया। पीपा जी ने मंत्र उपदेश करके उसको चेला किया और रानी और सम्पत्ति आदि जो भेट की थी, सब फेर दी और कहा कि भक्तों से परदे का प्रयोजन नहीं है। राजा के भाई बन्धु यह वृत्तान्त सुन कर बहुत क्रोधित हुए और अन्तःकरण से पीपा जी के साथ दुष्टता करने लगे।

एक बनजारा बैल मोल लेने को बैल ढूंढता हुआ आया। राजा के भाइयों ने उसे बहका दिया कि पीपा जी के पास अच्छे २ बैल हैं। बनजारे ने

आकर पीपा जी के आगे नकद रुपये रख दिये और कहा कि नये २ बैल मोल लेने आया हूं। पीपाजी दुष्टों की दुष्टता जान गये, कहने लगे कि इस समय बैल चरने गये हैं, फिर आकर ले जाना। बनजारा तो चला गया और पीपा जी ने उसी रुपये से भंडारा और महोत्साह आरंभ किया। हजारों साधु जमा थे, बनजारा आया और बैलों के लिये विनय करने लगा। पीपा जी ने कहा कि ये हजारों बैल खड़े हैं, जो परम धाम तक खेप पहुंचा देते हैं, जितने चाहे लेजा। बड़भागी बन जारा हरिभक्तों का दर्शन करके उसी घड़ी भगवत् की शरण हुआ और उसने अच्छे २ कपड़े साधुओं को दिये। दुष्ट लोग यह सुन कर बहुत ही लज्जित हुए।

एकबार घोड़े पर सवार होकर पीपा जी स्नान करने गये, घोड़े को खुला छोड़ कर स्नान करने लगे। घोड़े को दुष्ट लोग चुरा ले गये। पीपा जी ने स्नान करने चलने का विचार किया, तो घोड़ा कसा कसाया आगे आकर खड़ा हो गया, मानों कोई तैयार करके ले आया है। दुष्टों ने जब घोड़े को, जहां बांध रक्खा था वहां, न देखा तो बड़े लज्जित हुए।

एकबार पीपा जी हरिभक्तों की समाज में गये हुए थे। पीछे घर पर साधु आये। घर में कुछ था नहीं, सीता जी बाजार में जाकर एक बनिये से रात को आने का करार करके सामग्री ले आयी, उसी घड़ी पीपा जी भी आगये, सीता ने सब वृत्तान्त उनसे कह दिया, बहुत प्रसन्न हुए। सीता रात को चलीं तो जल बरसने लगा। पीपा जी अपनी पीठ पर चढ़ा कर बनिये के घर ले गये। सीता के दर्शन से बनिये को ज्ञान हो गया, चरण सूखे देख कर पूछने लगा, माता किस प्रकार आयीं सीता ने कहा कि मेरे स्वामी अपनी पीठ पर लाये हैं, दरवाजे पर खड़े हैं, बनिया दौड़ कर चरणों में पड़ा और सिर पिटने लगा। पीपा जी को दया आयी, दीक्षा देकर उसे आवागमन के चक्र से छुड़ा दिया।

दुष्टों ने यह वृत्तान्त राजा तक पहुंचाया। ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि यह बड़ी अनीति है। राजा अज्ञानी अपनी समझ कर बे विश्वास हो गया। पीपा जी ने सुन कर विचार किया कि जिसका गुरु से विश्वास छूट जाता है, उस के दोनों लोक बिगड़ जाते हैं, राजा को दृढ़ विश्वास करा देना चाहिये। ऐसा विचार कर पीपा जी राजा के घर गये और राजा को अपने आने की खबर करायी। राजा ने कहला भेजा कि पूजा करता हूं पीपा जी ने कहा कि यह राजा बड़ा मूर्ख है, चमार के घर जूती लेने गया है, नाम पूजा का लेता है, राजा सुन कर तुरन्त नंगे पैरों बाहर आकर चरणों में पड़ गया। पीपा जी ने राजा को चेताने के निमित्त कुछ और परीक्षा देना उचित समझ कर राजा की एक रानी जो बंध्या थी उस को ले आने की आज्ञा दी। राजा गया तो आंगन में एक व्याघ्र बैठा हुआ देखा, लौटने लगा, तो पीछे भी व्याघ्र दिखाई दिया, तब तो पीपा जी की करामात समझ कर रानी के पास गया और देखा कि तुरन्त का जन्मा एक लड़का रानी की गोद में है। तब तो राजा विश्वास युक्त होकर कांपता हुआ कहने लगा कि मैंने आप की महिमा नहीं जानी, मेरा अपराध क्षमा कीजिये। पीपा जी ने उसी लड़के के स्वरूप से प्रकट होकर कहा कि अरे मूर्ख! उस दिनके विश्वास और प्रेम को स्मरण कर, जिस दिन चेला हुआ था। उचित तो यह था कि दिन दिन भगवत् और गुरु में प्रीति अधिक होती, यह नहीं कि विमुख होकर नरक में जाने

लगा। अब से ध्यान रख कि दोनों लोक सहज में प्राप्त हों। इस प्रकार शिक्षा देकर पीपा जी अपने स्थान पर लौट आये।

एक दुर्गा उपासक ब्राह्मण के घर पीपा जी ने भगवत् का भोग लगा कर भोजन किया और ब्राह्मण को भी भोजन कराया उसके प्रभाव से ब्राह्मण को दुर्गा के दर्शन हुए। तब से ब्राह्मण भगवत्मूर्ति की सेवा आराधना करने लगा।

एक सुन्दरी तेलिन तेल लो, तेल लो, कह कर तेल बेचती फिरती थी। पीपा जी ने कहा कि इस मुख से 'राम' 'राम' कहने से बड़ी शोभा होती। तेलिन क्रोध करके बोली कि जब कोई मर जाता है, तब 'राम' 'राम' कहा करते हैं। जब वह घर पहुंची, तो अपने पति को मरा हुआ पाया। अधीन होकर चरणों में पड़ी और लड़के बालों सहित राम नाम लेने की प्रतिज्ञा की। पीपा जी ने उसके मृतक पति को जिला दिया।

एक बार साधु सेवा के लिये एक भैंस कहीं से आगयी। चोर भैंस को चुरा ले चले। पीपा जी भैंस के बच्चे को लेकर चोरों के पीछे २ यह पुकारते चले कि बच्चे बिना भैंस दूध न देगी, इसको भी लेते जाओ। चोर अधीन हुए और भैंस को भैंस के स्थान पर बांध गये।

एक दिन पीपा जी कहीं से एक गाड़ी गेहूं और कुछ रुपया लाते थे। बटमारों ने वह गाड़ी छीन ली। पीपा जी वह रुपया भी देने लगे कि बिना रुपये के घी चीनी आदि रसोई की सामग्री न आ सकेगी। बटमार अधीन हुए और गाड़ी आप पहुंचा गये।

एक महाजन का बहुत रुपया साधु सेवा के निमित्त पीपा जी पर कर्ज हो गया। महाजन नित्य तकाजा किया करता था और पीपा जी आज कल किया करते थे। एक दिन महाजन ने कड़ा तकाजा किया। पीपा जी ने कहा कि हम पर कुछ नहीं चाहिये। महाजन ने हाकिम के यहां नालिश की। जब वह हिसाब की बही दिखाने लगा, तो सब बही कोरी देखी। महाजन लज्जित हुआ। हाकिम ने दंड देना चाहा, तो पीपा जी उसे छुड़ा लाये। महाजन चरणों में पड़ा और रोने लगा। बही ज्यों की त्यों होगयी और पीपा जी ने उसका रुपया भी दे दिया।

एक बार पीपा जी श्रीरंग जी से मिलने को गये। रंग जी पूजा कर रहे थे। फूलों की माला मानस में पहिराते थे, मुकुट में अटक जाती थी, बनती नहीं थी। पीपा जी ने कहा कि कैसे पूजा करते हो कि माला पहिनाते नहीं बनती। श्रीरंग जी सुन कर दौड़े आये। दोनों परस्पर प्रेम पूर्वक मिले।

एक ब्राह्मण ने लड़की के विवाह के लिये याचना की। पीपा जी ने उसको राजा के पास ले जाकर अपना गुरु बतला कर उसे द्रव्य दिलवा दिया।

एकादशी के दिन जागरण होता था। पीपा जी तुरन्त उठ कर अपने हाथ मलने लगे। राजाने कारण पूछा तो कहा कि द्वारका में भगवत् के चंदुए में आग लग गयी थी, उसको बुझाया है। राजा ने सांडनी भेज कर समाचार मंगवाया, तो सत्य बात निकली और यह भी मालूम हुआ कि पीपा जी हर एकादशी को जागरण में वहां आते हैं।

एक दिन पीपा जी नदी पर स्नान करने गये थे। मार्ग में एक तेली के लड़के से बैल लेकर एक ब्राह्मण को दे दिया। जब तेली ने पीपा जी से आकर अपना दुःख सुनाया, तो पीपा जी ने कहा कि घर पर जाकर देख। तेली को बैल घर पर बंधा

मिला।

एक बार अकाल में पीपा जी ने लोगों को इतना अनाज और कपड़ा दिया कि किसी को अकाल ही नहीं व्यापा।

एक बार पीपा जी को बड़ी सम्पत्ति कहीं से हाथ लगी। दो चार दिन में खर्च करदी।

एक मनुष्य से गो हत्या होगयी, उसे जाति वालों ने जाति से निकाल दिया। पीपा जी ने उसके मुख से राम नाम कहलाया और भगवत्प्रसाद भोजन करा के भगवद्भक्त कर दिया। जाति वालों ने उसे जाति में नहीं लिया। तब पीपा जी ने वेद शास्त्रों के सिद्धान्त से राम नाम की महिमा प्रकट दिखा कर कहा कि राम नाम एक बार मुख से निकलने से करोड़ों जन्मों के महापातक दूर हो जाते हैं, तो उस नाम के हजारों बार लेने से एक गो हत्या कहाँ रही सब ने निश्चय किया और उसको जाति में ले लिया। हे मंसाराम! पीपा जी के ऐसे चरित्र बहुत से हैं, उनका वर्णन नहीं हो सका। ऐसे ही चरित्र भगवत् के हैं, भक्तों और भगवत् में क्या भेद है? कुछ नहीं।

छप्पय—भगवत् प्यारे भक्त, भक्त कूं भगवत् प्यारे।
दोनों रहे अभिन्न, होंय नहिं क्षण भर न्यारे॥
भगवत् होंय प्रत्यक्ष, भक्त के तन के मांहीं।
भक्त जानते मर्म; विमुख नर जानत नाहीं॥
भोला! हो हरि भक्त रे, भक्तों के लिख लेखरे।
पीपा सीता की कथा, बार बार पढ़ देख रे॥

कथा श्रीरंग जी की।

श्रीरङ्ग जी जयपुर के राज्य में देवसा गांव में रहते थे, सरावगी थे। उनका सेवक मर कर यमदूत हुआ और एक बनजारा जो उस ग्राम में आकर टिका था, उसके प्राण निकालने को आया, आगे की प्रीतिवश रङ्ग जी से मिला और सब वृत्तान्त कहा। श्रीरङ्ग जी को इस लीला के देखने की चाह हुई। जहाँ बनजारा टिका था, वहां वे गये देखा कि उस यमदूत ने एक बैल को भड़का दिया, बनजारा बैल पकड़ने को उठा। दूत बैल के शिर पर जा बैठा और उसने सींग से बनजारे का पेट फाड़ कर बड़ी पीड़ा से मार डाला। श्रीरङ्ग जी देख कर त्रसित हुए और यमदूतों से बचने का उपाय पूछने लगे। उसने कहा कि भगवद्भक्ति बिना सब को ऐसी ही पीड़ा होती है, भगवद्भक्तों के पास स्वप्न में भी यमदूत नहीं आते। श्रीरङ्ग जी उसी घड़ी भगवद्भक्ति अंगीकार करके दूत के बताने से श्री रामानन्द जी के शिष्य श्री अनन्तानन्द जी के चेले हो गये। थोड़े ही काल में इनको भगवत् स्वरूप की प्राप्ति होगयी और वे जन्म मरण के भय से छूट गये।

एक प्रेत श्रीरङ्ग जी के बेटे को दिखायी दिया करता था, इस कारण वह दुबला होता चला जाता था। श्रीरंग जी यह वृत्तान्त सुन कर एक दिन लड़के की खाट पर सो रहे। जब प्रेत आया, तो उसे मारने को दौड़े। प्रेत भागा श्रीरंग जी के ललकारने से ठहर गया और कहने लगा कि मैं इसी ग्राम का अमुक सुनार हूं, परस्त्रीगमन, चोरी और झूठ बोलने का कर्म करने से प्रेत हो गया हूं, अपने उद्धार के लिये आपके द्वारे का सेवन करता हूं। श्रीरंग जी को दया आई, उन्होंने उसे भगवत् का चरणामृत पिला दिया। उसके प्रभाव से वह देवता का स्वरूप पाकर प्रेत योनि से छुट गया।

दो०—भोला! जिनके दर्श से, प्रेत होय हैं देव।
ऐसे भक्तों की सदा, कीजे मन से सेव॥

कथा हठिनारायण की।

कृष्णदास जी के चेले हठी नारायण जी पंजाब देश के रहने वाले भगवत् के परमभक्त थे, सर्वकाल संतोषयुक्त भजन में लगे रहते थे। भंग पीने में इनकी रुचि थी। बादशाह ने धतूरा मिला कर इनको भंग पिलादी। जब कुछ न हुआ, तब मन के द्वेष से विष पिलाया, ऊपर से ऐसी वस्तु खिलाई कि जिसमें विष मिट जाय परन्तु विष ने कुछ काम न किया। बादशाह लज्जित होकर चरणों में गिरा और अपराध क्षमा करने की विनय करने लगा।

हे मंसाराम! यह कथा भंग पीने के लिये प्रमाण रूप नहीं है, भंग त्याज्य है, भंग को शास्त्र ने मदिरा में गिना है, बरु भंग में मदिरा से भी अधिक एक अवगुण है कि बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है, इसलिये किसी बड़े के पीने से प्रमाण रूप नहीं हो सकी। मूर्ख महादेव जी का दृष्टान्त दिया करते हैं। शिवजी तो हलाहल विष पी गये थे, भंग पीने वाला विष को भी पीवे। शङ्कर स्वामी भट्ठी में औटा हुआ कांच पी गये थे, क्या कोई थोड़ा सा भी औटा हुआ कांच पी सका है! बड़े के आचरण से निषिद्ध वस्तु ग्राह्य नहीं हो सकी। चौ०-समरथ कों नहिं दोष गुसांईं, रविपावक सुरसरि की नाईं। कई पुराणों के वचन युक्त हैं कि जो बड़े महात्मा के दृष्टान्त से निषेध को विधि समझते हैं या त्याग को ग्राह्य समझते हैं, वे नरक गामी होते हैं। हठी नारायण ने सिद्ध होने के पीछे भंग पी थी, और सिद्ध महात्मा विधि निषेध के बंधन से बाहर हैं, क्योंकि वे भगवत् रूप हो जाते हैं। सारांश यह है कि भंग पीना निषिद्ध है।

दो०-भोला! भगवद्भक्त पर, चले नहीं अभिचार।
हठी नरायण कथा का, यही निकलता सार॥

कथा रैदास जी की।

रैदास भगवत् के परमभक्त थे। इनकी वाणी और काव्य हृदय के अंधकार और सन्देह को दूर करने के लिये सूर्य के सदृश हैं। शास्त्र और वेद के अनुसार कर्म करने में यह हंस के समान थे अर्थात् इन्होंने निषेध को छोड़ कर सार का ही ग्रहण किया। यह इसी शरीर में भगवद्धाम को प्राप्त हुए और इनके चरणों को बड़े २ वर्ण आश्रम वालों ने नमस्कार किया।

यह पूर्व जन्म में रामानन्द जी के चेले ब्रह्मचारी थे, भिक्षा करके गुरु सेवा और भगवत्प्रसाद किया करते थे। एक दिन जल वर्ष रहा था। बनिया बहुत दिनों से भिक्षा लेने को कहा करता था, परन्तु यह उसकी भिक्षा कभी नहीं लेते थे, उस दिन उसी के यहां से रसोई की सामग्री ले आये। जब रामानन्द जी भोग लगाने लगे, तो भगवत् ध्यान में न आये। रामानन्द जी ने ब्रह्मचारी से पूछ कर उस बनिये का वृत्तान्त बूझा तो मालूम हुआ कि उस का लेन देन चमारों के साथ था। रामानन्द जी ने ब्रह्मचारी को शाप दिया कि तुझे चमार का जन्म प्राप्त हो। ब्रह्मचारी ने ब्राह्मण का शरीर छोड़ कर चमार के घर जन्म लिया परन्तु भगवद्भक्ति और गुरु के प्रताप से पहले जन्म का इनको स्मरण बना रहा। जन्मते ही इन्होंने माता का दूध पीना छोड़ दिया, क्योंकि एक मंत्र के उपदेश बिना खाना पीना निषिद्ध है। रामानन्द जी को भगवत् ने आकाशवाणी द्वारा कहा कि ब्रह्मचारी को तुमने घोर दण्ड दिया है, उस पर दया करना उचित है। रामानन्द जी ने भगवत् की आज्ञा से चमार के घर

जाकर मंत्र उपदेश करके रैदास नाम रक्खा और दूध पीने की आज्ञा दी।

जब रैदास जी कुछ सयाने हुए तो भगवद्भक्तों की सेवा करने लगे, जो कुछ घर से मिलता भगवद्भक्तों के आगे रख देते। इनके पिता ने अप्रसन्न होकर घर के पीछे एक जगह इनके रहने को देदी, धन बहुत था, परन्तु एक दमड़ी नहीं दी। रैदास जी स्त्री समेत आनन्द से रहने लगे, जूती बनाकर गुजारा करते, कोई वैष्णव या साधु देखते तो बिना दाम जूता पहिना देते थे। पश्चात् इन्होंने एक छप्पर डाल लिया और उसमें भगवन्मूर्ति विराजमान करके सेवा करने लगे और आप उस छप्पर के आगे धौड़े में बिन छाया पड़े रहते। यद्यपि ऊपर से दुःख दरिद्र देखने में आता था, परन्तु भगवत् के ध्यान में प्रसन्न रहते थे। भगवत् कंगाली दूर करना उचित समझ कर आप साधु के रूप से रैदास के घर आये। रैदास ने भगवत् रूप जान कर बड़ी सेवा की और भोजन कराया। साधु ने प्रसन्न होकर एक पारस पत्थर रैदास जी को दिया और गुण वर्णन करके बहुत यत्न से रखने को कहा। रैदास ने कहा कि मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं है, मेरा धन सम्पत्ति रामनाम है। साधु ने समझा कि रैदास इस पारस का प्रभाव नहीं जानता, इसलिये उसने उसे रांपी से लगा कर रांपी सोने की करदी। रैदास जी ने मन में समझा कि रांपी भी हाथ से गयी। जब साधु ने बहुत आग्रह किया तो रैदास जी ने पारस छप्पर में रखने को कह दिया। साधु छप्पर में रख कर चले गये, तेरह महीने पीछे फिर आये तो रैदास जी का वैसा ही वृत्तान्त देख कर पूछने लगे कि पारस क्या हुआ? रैदास जी ने कहा कि जहां आप रख गये थे, वहां ही होगा, मुझे उसे हाथ लगाने में डर लगता है। भगवत् उसको लेकर चले गये।

एक दिन पूजा की पिटारी में से पाँच मोहरें निकलीं। रैदास जी को भगवत् सेवा में भी भय लगने लगा। भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा दी कि यद्यपि तुमको कुछ लोभ नहीं है, परन्तु अब जो कुछ हम दें, उसको अंगीकार करो। तब रैदास जी ने अंगीकार कर लिया और एक पक्की धर्मशाला बनवा कर उसमें भगवद्भक्तों को बसाया, पश्चात् एक भगवत् मन्दिर तैयार कराके नाना प्रकार के फंदोये, झालर, सुनहरी बन्दनवार, दीवारगीरी और छतबन्द इत्यादि से ऐसा सजाया कि जो दर्शन करने वाले आते थे, वे मन्दिर की शोभा और भगवन्मूर्ति की छबि देख कर मोहित हो जाते थे। पूजा प्रतिष्ठा सब ब्राह्मणों के हाथों से होती थी। पश्चात् जहाँ रैदास जी आप रहते थे, वहां उन्होंने एक दो महला मकान बनवाया और बड़ी प्रीति से भगवत् आराधन आरंभ किया। बहुत से ब्राह्मणों ने शत्रुता के कारण राजा के पास जाकर कठोर वचन कह कर फरयाद की कि चमार जाति को भगवन्मूर्ति के पूजन का अधिकार किसी शास्त्र में नहीं है, रैदास निःशंक भगवत् मूर्ति विराजमान करके सेवा पूजन इत्यादि सब करता है, उसे दण्ड देना चाहिये। रैदास जी को बुलाया और राजा पर रैदास जी का ऐसा प्रताप व्यापा कि राजा ने एक दो बात कह कर उन्हें लौटा दिया।

राजा की रानी का नाम झाली था, उसनें जब रैदास जी का प्रताप सुना तो वह सेविका हो गयी। जो ब्राह्मण रानी के यहां रहते थे, वे अप्रसन्न हुए और कहनें लगे कि रानी की बुद्धि मारी गयी है। रानी नें सब समाचार राजा से कहा। राजा ने रैदास जी को बुलाया और सब ब्राह्मण इकट्ठे हुए। ब्राह्मण जाति की बड़ाई करते थे और

रैदास जी का यह वचन था कि भगवत् को भक्ति प्यारी है, जाति पर वे दृष्टि नहीं देते। बहुत वाद-विवाद होनें के पीछे यह बात ठहरी कि भगवत् मूर्ति जो सिंहासन पर विराजमान है, वह जिसके पास प्रसन्न होकर आजावे, वह ही भगवत् को प्यारा है। उस पर ब्राह्मणों नें पूरे तीन पहर तक वेद पढ़ा और मंत्रजप किया, परन्तु कुछ न हुआ। जब रैदास जी की बारी आयी, तो वे विनय करनें लगे कि महाराज! अपनें पतितपावन नाम को सत्य कीजिये। पश्चात् कई विष्णुपद कीर्तन किये। प्रथम पद का तुक यह है-'विलम्ब छांडि आइये कि तो बुलाय लीजिये' दूसरे पद का यह तुक है-'देव देव आयो तुम शरणा, सेवक जानि कृपा चित धरना' भगवत् पदों को सुनते ही सिंहासन पर से उठ कर रैदास जी की गोद में आ बैठे। सब विश्वास करके आधीन हुए।

एकबार रानी झालो काशी से अपनी राजधानी में आयी और यज्ञ करनें का विचार करके उसने रैदास जी को बड़ा विनयपत्र लिख कर भेजा रैदास जी चित्तौड़ में आये। रानी ने आनन्दित होकर बहुत रुपया दान पुण्य किया, ब्राह्मणों ने विचारा कि इस रानी का गुरु चमार है, इसलिये यह ही उचित है कि सूखी सामग्री लेकर रसोई तैयार करें। ऐसा ही उन्होंने किया। जब भोजन करने को बैठे तो सब ने दो दो जनों के बीच में रैदास जी को बैठा देखा। सब विश्वास युक्त अधीन होकर चरणों में पड़े और लाखों मनुष्य चेले हो गये। सब का विश्वास दृढ़ करने को रैदास जी ने अपने शरीर की खाल उतार कर यज्ञोपवीत दिखाया और गुरु के शाप की बात कह कर सब का मोह दूर करके आप शरीर छोड़ कर परम धाम को चले गये, जहां से लौट कर फिर संसार में आना नहीं होता।

कुं-गाथा यह रैदास की, ऐसी शिक्षा देय।
जो भगवत् का भक्त हो, वही परम पद लेय॥
वही परमपद लेय, भक्ति हरि की जो करता।
तन का तज अभिमान, ध्यान भगवत् का धरता॥
भोला! कर हरि भक्ति, झुका भक्तों को माथा।
भक्तों के लिख लेख, देख भक्तों की गाथा॥

गुरु और शिष्य

[ले० श्री प्रेम-पथ पथिक]

प्रिय भक्ति प्रेमी पाठको! क्षमा कीजियेगा यदि इस क्षुद्र लेखनी से ऐसा कोई भाव प्रगट हो जिससे आप के हृदय में चोट पहुंचे। मेरा अभिप्राय यह हरगिज नहीं है कि मैं इन पवित्र नामों में कलंक लगाऊं बल्कि आधुनिक शिक्षा और गुरु शिष्य के विषयमें ही कुछ चर्चा करने का मतलब है

गुरु का अर्थ अंधकार को दूर करने वाला अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकार को ज्ञान रूपी प्रकाश से नाश कर देने वाला है। किन्तु इन दिनों लोगों ने अर्थ को अनर्थ कर डाला है। उन दिनों गुरु के पद से वही विभूषित होते थे जिन्हें शास्त्रों तथा शिष्यों को इसी लोक से नहीं बल्कि परलोक से भी पार उतार देने का सामर्थ्य रखते थे। वे ज्ञान के भंडार और विद्या के समुद्र होते थे। अपने शिष्यों के लिये कुछ भी बाकी नहीं रखते थे। शिष्यों के सुख में सुखी और दुख में दुखी होते थे। जैसे भ्रमरी कीट दूसरे कीड़ों को पकड़ अपने सन्मुख रखते २ अपने जैसा बना लेती है। उसी प्रकार शिष्य गुरु के साथ रहते २ उनके आचार विचार

तथा सम्पूर्ण विद्याओं में पूर्ण पारंगत हो जाते थे।

शिष्य भी तन, मन और धन से गुरु की सेवा करते थे और उनकी सभी आज्ञाओं को सहर्ष पालन करते थे। यदि उन्हें गुरु के लिये प्राण भी देने पड़ते थे तो वे दे देते थे। गुरु भी शिष्यों की परीक्षा लिया करते थे और उन्हें बड़ी कठिन परीक्षायें देनी पड़ती थीं। शिष्य के आज्ञा पालन से गुरु प्रसन्न हो उसे आशीर्वाद देते थे।

आधुनिक काल में ऐसे गुरु और शिष्य विरले ही मिलते हैं। इन दिनों तो डेढ़ पैसे में गुरु और एक पैसे में चेला बन जाते हैं। एक पैसे में बाल कटा और धेले में कपड़ा रंगा गुरु बन जाते और एक पैसा गुरु दक्षिणा दे देने ही से शिष्य बना लिये जाते हैं। गुरु ने कान फूंक दिया और कहा 'बेटा मांग खाओ'। गुरु ठहरे निरक्षर भट्टाचार्य और शिष्य हुये गोबर गणेश। गुरु ने समझा, मेरा एक शिष्य बढ़ा और शिष्य ने विचार किया कि अब तो मरने के समय यमराज से पीछा छूटा। इस प्रकार के कनफुक्कों की भरमार है। इनमें से बहुत तो शिष्यों के धन को अपनी बपौती समझते हैं और साल में एक बार शिष्य के यहां आधमकते और चन्दा ले चम्पत हो जाते हैं। यदि शिष्य कुछ जिज्ञासा करता है तो कह देते हैं कि अजी बेटा! अभी तुम गृहस्थ हो क्या उपदेश दें कुछ दिन बाद स्वर्ग की सीढ़ी दिखा देंगे, बस बेड़ा पार है। ऐसे गुरु जब शिष्य के द्वार पर आते हैं तो शिष्य का कलेजा कांप उठता है और परमात्मा से मन ही मन प्रार्थना करता है कि वह दयालु ऐसे धन लोलुप यमदूत-गुरुओं से पीछा छुड़ावें। ऐसे गुरु गले के गल गण्ड (घेघ) बन जाते हैं और विचारे अबोध शिष्य को लेने का देना पड़ जाता है। कहाँ तो चौबे से छब्बे बनने जाते हैं और कहां दूबे ही बनकर आते हैं।

कुछ ऐसे भी गुरु नामधारी दीख पड़ते हैं जो मान न मान मैं तेरा मिहमान वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। बस जहां किसी भोले भाले व्यक्ति को देखा कि झट अपनी बड़ाई के विचार से कह दिया कि यह तो मेरा अनन्य भक्त और शिष्य है। शिष्य ने भी देखा कि हमें भी मुफ्त के गुरु मिलते हैं इसलिये हाथ जोड़ दिया और मुँह से कह दिया "बाबा दण्डवत्"। गुरु ने उत्तर में कहा "बेटा मस्त रहो।" बस इतना ही से गुरु शिष्य का नाता समाप्त होगया।

यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'गुरु कीजै जान, पानी पीजै छान।" बात भी ठीक ही है। पहले खूब विचार कर गुरु करना चाहिये और अब एक बार किसी को गुरु मान लिया तो यदि वह अयोग्य और व्यभिचारी भी हो तब भी उसमें श्रद्धा और भक्ति की कमी नहीं होनी चाहिये। गुरु में जितना अधिक विश्वास और निष्ठा होगी उतनी जल्दी साधना में सिद्धि प्राप्ति होगी। शिष्य हो तो एकलव्य जैसा। गुरु द्रोणाचार्य के अस्वीकार करने पर वह अशान्त बालक जंगल में जाता है और अपने गुरु की प्रतिमा बना उन्हीं की आज्ञा ले शस्त्रास्त्र में निपुण हो जाता है और गुरु दक्षिणा में हंसते २ बड़े श्रद्धा-प्रेम से अंगूठा काट कर गुरु के सम्मुख रख देता है।

आधुनिक परिपाटी और प्राचीन शिक्षा दीक्षा की परिपाटी में आकाश और पृथ्वी का अन्तर होगया है। पहले शिष्य भिक्षाटन कर अन्न लाते और गुरु को अर्पण कर तब उनकी आज्ञा से स्वयं भी प्रसाद पाते थे। वृक्षों के नीचे रह कर प्रकृति की गोद में पलते थे और गुरु उन्हें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शिक्षायें देकर

उन्हें पचीस वर्ष की अवस्था तक संसार में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये सुयोग्य बना देते थे। गुरु के आश्रम से निकलने पर उनका शरीर हृष्ट पुष्ट और मुख कान्ति युक्त होता था। उनको देखने से चित्त प्रसन्न हो जाता था और वे भी संसार के काम लायक होकर अपना और अपने देश का मुखोज्वल करते थे। पर इन दिनों ठीक इसका उलटा है। मकानों में बन्द कर सवैतनिक, अयोग्य गुरुओं (मास्टरों) द्वारा जो शिक्षा दी जाती है उसका बुरा परिणाम हमारी आखों के सामने है। सैकड़े में पाँच लड़के भी कठिनता से ऐसे निकलते हैं जो अपने जीवन को भार स्वरूप न समझते हों। उन्हें जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें प्रायः प्रेम कहानी ही की भरमार रहती है। शिक्षकों के प्रति तो इतना ही प्रेम है कि शिक्षकों को हम वेतन देते हैं और हमें वे बदले में पढ़ा देते हैं। शिक्षकों में इतने अवगुण होते हैं जिनका बुरा प्रभाव बिचारे सरल हृदय बालकों पर पड़े बिना नहीं रहता। लिखते कलेजा मुँह को आता है कि हमारे नवयुवक अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं और कलीखिलने भी नहीं पाती है कि निर्दयी भौंरें उसका रस चूस उसे तहस नहस कर देते हैं।

जिन गुरुओं के हाथ में बिचारे शुद्ध तथा निर्दोष बालक अपने जीवन पल्लव को पल्लवित कर अपने भविष्य जीवन को सुखमय बनाने के लिये सौंपे जाते हैं वेही बालक युवावस्था प्राप्त करते न करते दीन, हीन, मुख मलीन और पृथ्वी का भार होकर जीवन पर्यन्त रोते और अपने अभिभावकों तथा उन गुरुओं को सौ सौ गालियां देते हैं। भला जब रक्षक ही भक्षक बन जावे तो बिचारे अबोध बालक का क्या अपराध।

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने होनहार बालकों को ऐसे गुरुओं की देख देख और शिक्षा दीक्षा में दें जिनका चरित्र सर्वथा प्रशंसनीय हो और जो पिता और पुत्र का बर्ताव रख सके। यद्यपि ऐसे व्यक्तियों की संख्या अत्यन्त न्यून है फिर भी 'जिन ढूँढा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ' के अनुसार अब भी वसुन्धरा ऐसे व्यक्तियों से खाली नहीं। जिन बालकों के भावी जीवन पर ही देश, समाज और राष्ट्र की सफलता निर्भर रहती है उन्हें यदि उचित रूप से शिक्षा नहीं दी गई तो कहना पड़ेगा कि हमने उनके प्रति घोर अन्याय किया और उनके गले पर भोथरी छुरी फेर दी। अतः हमारा यह प्रधान कर्त्तव्य है कि हम अपने बच्चों को सच्चरित्र अध्यापकों, शिक्षकों और गुरुओं के हाथ में दें। मूर्ख रखना अच्छा है लेकिन उन्हें ऐसे नर पिशाच व्यक्तियों के हाथ में सौंप उनके जीवन विटप को विषैले कीड़ों से खिल-वाना उचित नहीं। उन्हें परम पिता परमात्मा से डरना चाहिये और अपने उत्तरदायित्व को भी समझना चाहिये।

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी]

गतांक से आगे।

६०. केवल शारीरिक ब्रह्मचर्य ही पर्याप्त नहीं है, मानसिक ब्रह्मचर्य आवश्यक है। मानसिक ब्रह्मचर्य मनुष्य की वह पवित्र अवस्था है जिस में मन काम के आवेग और भावनाओं से बिलकुल मुक्त रहता है। जिस ने अपनी इन्द्रियों को तो व्यभिचार से रोक लिया है परन्तु निरन्तर काम

वासना उसके चित्त में रहती है वह मनुष्य दम्भी या मिथ्याचारी ही समझना चाहिये।

[गी० अ० ३ श्लोक ६]

६१ अधिक पुरुषों में काम की लिप्सा बहुत होती है। उनमें काम इच्छा अत्यन्त तीव्र होती है। कुछ ऐसे आदमी होते हैं जिनकी काम वासना समय २ पर जागृत होती है। परन्तु शीघ्र निवृत्त हो जाती है। उनके चित्त में साधारण स्वभाव के अनुसार एक प्रकार का आवेग होता है। परमात्मा के किसी नाम का जप, सात्विक भोजन, सत्संग, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन, प्राणायाम, प्रार्थना, कीर्तन, विचार, विवेक, भक्ति, ध्यान इन सब साधनों के द्वारा काम-इच्छा काम का आवेग निर्मूल हो सकता है। परन्तु काम वासना का पूर्ण नाश ज्ञान प्राप्त करने पर या आत्म साक्षात् करने पर ही सम्भव है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रस वर्जं सोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

एक घड़ी एक चमचा एक पंखा और एक पत्थर का टुकड़ा इन सब में अन्तर आत्मा या उपहित चैतन्य या उपाधि संयुक्त बुद्धि या सीमा बद्ध अनुबन्ध वर्तमान है। बाह्य नाम और रूप को भूल जाने से हम अन्तर आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं।

६२. बन्धन का स्वरूप वासना है और मोक्ष का स्वरूप वासना से शून्यावस्था है। गुरु शिष्य को पहिले पहल निषेध के ढंग से शिक्षा देता है वह उपदेश करता है कि संसार असत्य जड़ और दुखों से भरा हुवा है फिर वह उपदेश करता है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) सब केवल ब्रह्म ही है। इस प्रकार की शिक्षा विधी के ढङ्ग से देता है यदि वह आरंभ में ही विधि के ढङ्ग से शिक्षा देने लगे तो शिष्य को बहुत आश्चर्य होगा और वह प्रश्न करेगा कि एक गधा और कुत्ता किस तरह ब्रह्म हो सकता है?

६३. संसार आत्मा से भिन्न नहीं है जो एक गुफा में बैठ कर आत्मा का ध्यान करता है वह संसार को पवित्र करता है और उस की सहायता करता है। अज्ञानी समाज सुधारक इस बात को समझ नहीं सकते कारण उनके दिमाग कर्म के संस्कारों से जकड़े हुये हैं। जो आदमी संसार में स्वार्थ रहित आत्म-भाव और सम दृष्टि से काम करता है वह आत्मा को प्राप्त कर लेगा। मूर्ख आदमी इस बात पर लड़ते रहते हैं कि कर्म श्रेष्ठ है या निवृत्ति श्रेष्ठ है। आध्यात्मिक पथ शुष्क कँटिदार और दुरारोह है यह लम्बा भी है इस पर चलने से पांव थक जाते हैं और ज़ख्मी हो जाते हैं दिल बेहोश होजाता है। परन्तु फल बहुत बड़ा है। इस पर चलने से अमर होजाता है धैर्य रक्खो, बुद्धिमानी से बिना विश्राम के चलते रहो, सावधान रहो, गिलहरी की भांति चपल और चंचल बनो। रास्ते पर कई विश्राम स्थान भी हैं अन्दर की झीनी आवाज को सुनो। यदि तुम पवित्र और सच्चे हो तो यह आवाज तुम को मार्ग दिखलायेगी।

६४. जब तुमको आत्मा का चमत्कार दिखलाई दे, या कोई अन्य अद्भुत आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हो तो पीछे को मत हटो, भय मत करो, साधन को मत छोड़ो, वीर बनो, वीरता और प्रसन्नता से आगे बढ़ो।

६५. जो आत्मा या ब्रह्म का मनन करता है वह मुनि कहलाता है।

६६. जीव या पृथक् आत्मा स्वर्ग में भोग भोगने के पश्चात वर्षा की बूंदों के द्वारा नीचे आता है और सूक्ष्म रूप में अन्न के दानों में छुपा रहता है। पश्चात् भोजन के साथ नीचे पिता के वीर्य

में प्रवेश कर जाता है और दस मास तक माता के गर्भ में रहता है। योनि अग्नि है और वीर्य बली है। छाँदोग्य उपनिषद् में पंचाग्नि विद्या को पढना चाहिये फिर तुम्हारी समझ में यह बात बिल्कुल ठीक आजावेगी।

६७. मानसिक भावों द्वारा तुम प्राणी मात्र में ऐक्य-भाव को अनुभव कर सकते हो, परन्तु शरीर से व्यवहार में अद्वैत भाव का स्थिर रखना असम्भव है। तो भी बहुत करके व्यवहार में भी अद्वैत भाव को स्थिर रखना चाहिये। केवल कोई परमहंस सन्यासी ही जोकि गुफा में रहता है या जो संसार में निर्द्वन्द होकर विचरता है इसका अभ्यास कर सकता है। इसको क्रिया अद्वैत कहते हैं।

६८. जब जीव अपने इस तुच्छ मिथ्या अहं-भाव का ब्रह्म में विश्लेषण करके उसमें लय होजाता है तो महा प्रलय हो जाता है।

६९. उस ज्ञानी पुरुष के लिए जिसकी सम दृष्टि होगई है संसार का अभाव हो जाता है। वह सर्वत्र आत्मा ही को देखता है।

७०. वह वेदान्ति भी जो केवल अहं ब्रह उपासना करता है (अहं ब्रह्मास्मि) इस जीवन में साक्षात्कार नहीं कर सकता। वह केवल ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा। वह स्वर्ग में नहीं जावेगा।

७१. लोशन के द्वारा बड़ा फोड़ा धोया जाता है पीछे उसके बूरिक मरहम लगाया जाता है। पश्चात् पट्टी बान्धी जाती है। इसी प्रकार यह मलिन शरीर बड़ा भारी फोड़ा है। इसको नित्य साफ किया जाता है फिर इसमें भोजन डाला जाता है। यह मरहम है। वस्त्र जो पहना जाता है वह पट्टी है। साधु इस शरीर को बड़ा फोड़ा या जखम समझते हैं जिसमें से पीप निकलता रहता है। परन्तु संसारी पुरुष मोह के कारण शरीर की पूजा करते हैं।

७२. धार्मिक बुद्धि वाले पुरुष की काम दृष्टि निवृत हो जाती है। वह स्त्री मात्र को मातृ भाव से देखता है, वह पराए धन को लोहे के समान समझता है और वह समस्त भूतों में एक आत्मा ही देखता है। ऐसा मनुष्य अवश्य पूजा के योग्य है।

७३. अंहकार का त्याग अर्थात् इस तुच्छ मिथ्या अहं, भाव का त्याग ही सर्व त्याग है,

७४. ईश्वर भी किसी को कैवल्य मोक्ष, प्रदान नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपने लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

७५. गुरु का होना आवश्यक है, आध्यात्मिक पथ अनेक विघ्न बाधाओं से पूर्ण है। गुरु मुमुक्षु को सरलता से आगे बढ़ादेंगे और सब प्रकार की विघ्न बाधाओं और कठिनाइयों को दूर कर देंगे।

७६. परमात्मा की कृपा आवश्यक है परन्तु वह कृपा उन पर ही होगी जो नित्य प्रति पुरुषार्थ करेंगे और उसका ध्यान धरेंगे।

७७. अपने ध्यान के कमरे में बैठो। इस संसार के मिथ्यापन का विचार करो, यह विचार करो कि न तो मैं हूं और न यह संसार है।

७८. ठीक आसन से बैठो, आंखों को बन्द करलो और खयाल करो कि कुछ भी नहीं है॥

७९. यह ध्यान करो कि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

८०. देखने में ज्ञानी के कोई विशेष चिन्ह नहीं होता। यह उसका आन्तरिक निश्चय होता है कि संसार मिथ्या है और केवल ब्रह्म ही सत्य है। ज्ञानी की यह भावना कि मैं ब्रह्म हूं उसका अज्ञानी से भेद करती है॥

८१ यदि तुम इस तुच्छ मिथ्या अहं का त्याग कर सकते हो तो निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर सकते हो। अहंकार, वासना और संकल्प ही एक मात्र रुकावटें हैं।

८२. प्रकाश के वर्तमान होने पर अन्धेरा रह नहीं सकता। काम वासना के होते हुए आत्मिक आनन्द की प्राप्ति असम्भव है। संसारी पुरुष भोग और आत्मिक आनन्द दोनों साथ २ चाहते हैं वह एक ही प्याले में दोनों प्रकार के रसों को पीना चाहते हैं जो नितान्त असम्भव है। वह संसारी भोगों से निवृत्त होना नहीं चाहते, उनके चित्त में पूर्ण वैराग्य नहीं होता वह केवल बहुत बातें बनाया करते हैं।

८३. एक वीर सिंह की भाँति वासनाओं को छिन्न भिन्न करके इस मास के पिंजरे से बाहर निकलो। सदैव प्रसन्न रहो। वीर बनो। साधन करो। पुरुषार्थ करो इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

८४. जीवन, उत्पत्ति, बढ़ना, परिवर्तन, बुढ़ापा और मौत यह छै प्रकार के परिवर्तन अर्थात् शुद्ध विकार हैं यही जीव अर्थात् प्रथक आत्मा पर अपना प्रभाव डालते हैं।

८५. उत्पत्ति, मृत्यु, भूख, प्यास, हर्ष और शोक छै उर्मियां हैं जो जीव पर प्रभाव डालती हैं।

८६. एक ज्ञानी भले प्रकार जानता है कि वह मीठा पदार्थ खा रहा है या खारी। उसको किसी प्रकार की आसक्ति या राग या मोह अभिनिवेश नहीं होता जैसा कि संसारी पुरुषों को होता है। यही दोनों में भेद है।

८७. संन्यासी या शुद्ध निवृत्ति वाले पुरुष को कम से प्रणव का जप करना चाहिये, समाधि लगानी चाहिये और वेदान्त के साहित्य को पढ़ना चाहिये।

८८. यदि वह ओ३म् का जप करते २ थक जावे तो उसको स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय समाप्त हो जाय तब उसको ध्यान में बैठ जाना चाहिये। यह तीनों बातें क्रमवार होनी चाहिये। इस प्रकार करने से उसका चित्त नहीं घबरायेगा। मन का इसी प्रकार साधन करना चाहिये। ऐसा करने से मन इधर उधर नहीं दौड़ेगा।

८९. उत्पत्ति निद्रा से जागने की भांति है। मृत्यु निद्रा की भान्ति है। वास्तव में तुम अमर हो। जब तुम उपाधी से रहित हो जावोगे अर्थात् सीमा युक्त बन्धनों से दूर हो जावोगे अर्थात् मन इन्द्रियों और स्थूल शरीर और कारण शरीर से प्रथक् हो जावोगे जो कि अविद्या आदि अज्ञान का कारण है।

९० एक नास्तिक कहता है कि परमात्मा नहीं है परन्तु वह जानने वाला जो परमात्मा के अभाव को जानता है ब्रह्म है।

९१. एक शून्य वादी कहता है केवल शून्य है परन्तु वह जानने वाला जो कि शून्य को जानता है ब्रह्म है।

९२. आम मीठा नहीं होता है। आम का खयाल मीठा है। स्त्री सुन्दर नहीं है ख़याल सुन्दर है। प्रसन्नता और सुन्दरता बाहर नहीं है वह मन में है।

९३. अन्धेरा ही एक प्रकार की माया है। ज्ञान से अज्ञान का पता लग जाता है। ज्ञान प्रकाश से भरा हुवा है, ज्ञान ब्रह्म है।

९४. तुम को सब प्रकार की मानसिक कमजोरियों को दूर कर देना चाहिये, झूठे अशुद्ध और वहम के विचार छोड़ देने चाहिये। केवल उसी

समय तुम प्रसन्न हो सकते हो जब कि झूठ डर या अशुद्ध संस्कारों को निकाल दो।

९५. देहोऽहमस्मि अर्थात् मैं शरीर हूं यह विचार महा पाप और अत्यन्त बुरा है।

९६. कर्म योग का अभ्यास करते हुए तीन बातें आवश्यक हैं। तुमको अहंकार से दूर रहना चाहिये, तुमको अपने काम के बदले में किसी प्रकार का उपहार या प्रशंसा पाने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। सफलता और असफलता में सम-चित्त रहना चाहिये।

सिद्ध सिध्योः समो भूत्वा गी० अ० २-श्लोक ४८

९७. ब्रह्म भाव को बढ़ाओ, उसका विकाश करो। इसको वेदान्त में स्वजातीय वृत्ति प्रवाह कहते हैं। संसारी विचारों को दूर करो, शरीर और भोगों को भूल जाओ। इसको विजातीय वृत्ति तिरस्कार कहते हैं।

आह्वाहन

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी]

जब भूमि पर भार बढ़त है होते हैं जब अत्याचार।
पुण्य क्षीण होते हैं जग के बढ़ते हैं फिर पापाचार॥
धर्मशीलता धार्मिक जग की द्रुतगति से करती है प्रयाण।
प्रबल होत है असुरों का दल देवकल्प होते म्रियमाण॥
कर्मवीर निज धर्म धुरन्धर धर्म हेतु मर जाते हैं।
शुभ पथ के पथिकों के लिये दृश्य स्मरणि कर जाते हैं॥
सद्-ग्रन्थों का दिव्य ज्ञान तब लुप्तप्राय हो जाता है।
गुणी जनों का ज्ञान ध्यान सब माया में खो जाता है॥
दुष्टों के दुष्कर्म वेग से सरिता दुरित चढ़े भारी।
सुनते हैं तब धरा-धाम पर प्रकट होत हैं असुरारी॥
सन्त जनों की रक्षा करते दुष्टों का करते हैं नाश।
अन्धकार में लुप्त विश्व को जग-जीवन करते हैं प्रकाश॥
वेद विहित कर्तव्य कर्म का करते हैं फिर से उत्थान।
सत्य सनातन धर्म-मर्म का जग में उदय होत है भान॥
कलियुग घोर आगया अब तो करते हैं सब हाहाकार।
आओ! आओ!! हे सर्वेश्वर! वेग करो जग का उद्धार॥
प्रभो दीन जन बिलख रहे हैं छोड़ चुके हैं जीवन आश।
दीनबन्धु जगदीश्वर स्वामी दूर करो दुःखों के पाश॥
भार रूप है जीवन-धन यह जीवन बिना तुम्हारे आज।
डूब चुके हैं हम तो भगवन् रख सकते हो तुम ही लाज॥

दो दो बातें।

[ले० श्री जयदेव जी डालमियां]

स्वामिन! यह क्या किया? भरी सभा में स्वांगभर कर रंग मंच पर भेज दिया और क्या करना होगा तथा कैसे करना होगा सो कुछ भी न बताया। अरे! इसमें मेरा क्या बिगड़ेगा? मुझे तो कोई इस स्वांग के नीचे पहचानेगा भी नहीं। इसमें हंसी तो तुम्हारी ही होगी मेरे मालिक! अब भी बता दो क्या करूं और कैसे करूं? अब यवनिका शीघ्र उठने वाली है। जल्दी करो नहीं तो सारा मजा किरकरा हो जायगा।

नट नागर! रस्सी पर बिना नाचना सिखाये इसे चढ़ा कर तुमने भारी भूल की। अरे! विचारा गरीब यदि गिर गया तो कहीं का न रहेगा। अब भी इसे धीरे से उतार कर अपने आश्रय में रख लो और नाचने का अच्छी प्रकार अभ्यास करा कर फिर अकेले रस्सी पर चढ़ाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा खेल भी पूरा न उतरे और यह भी विचारा चकना चूर हो जाय।

चतुर नाविक! भवसागर के बीचों बीच यह नाव लेजाकर तुमने ठीक नहीं किया। अरे! कहीं यह नाव किनारे न लगी तो तुम्हारी चतुराई में बट्टा लग जायगा। ग्राह आदि भयंकर जन्तुओं से और जल भंवर और भयानक तुफान से नाव निकाल ले जाना कोई हंसी खेल नहीं है। आज तक तुम्हें ऐसी डगमगाती हुई जीर्ण नौका से काम नहीं पड़ा, नहीं तो अभी तक कभी की तुम्हारी चतुराई हवा हो जाती। देखता हूं, आज किस कौशल से इस नैया को पार लगाते हो।

पार्थसारथि! अर्जुन के सीधे घोड़ों को तुमने आसानी से वश में करके कुरुक्षेत्र के रण में इधर उधर हांक कर अपना खूब कौशल दिखलाया लेकिन मेरे इस शरीर रथ के इन्द्रिय घोड़े जल्दी काबू में आने वाले नहीं है। फिर यह विश्व-समर क्षेत्र कुरुक्षेत्र से कहीं विशाल, दुर्गम और भयानक है। तुम्हारे कौशल का तब पता लगे जब तुम इन घोड़ों को वश में कर इस समर, क्षेत्र में इस रथके रथी को विजय दिलवावो।

सूरदास के कन्हैया! सूरदास को गढ़ों से निकाल कर सीधे मार्ग पर लगाना तुम्हारा विड़म्बना मात्र था। उसके बाहरी आंखे नहीं थी तो भीतर आँखों में बड़ा भारी प्रकाश था। तुम अगर उसको राह न बताते तो उसका क्या बिगड़ सकता था। तुम्हारी बड़ाई तो तब है जब तुम मुझ जैसे हिय के अंधों को सीधा मार्ग पकड़ा दो।

मीरां के गिरधारी! साधारण विष से मीरां की रक्षा कर तूं ने बड़ा भारी नाम कमा लिया। संसार में कितने मनुष्य विष भक्षण कर साधारण चिकित्सक की चिकित्सा से बच जाते हैं। इसमें तूं ने कौन सा बड़ा काम किया। तुम्हारे कौशल का पता तो तब लगे जब तूं मुझ जैसे विषय-विष भक्षी पर उस विषका कुछ असर न होने दे।

गोपाल कहा कर बड़ा अभिमान में फूला फिरता है क्यों? तुझे माखन दूध बड़े प्यारे थे इसलिए तूने गौवों का पालन किया। तेरा निस्वार्थ पालन तो जब कहलाय जब तू मेरे जैसे निकृष्ट जीव को अपने आश्रय में रख पालन करे और इधर उधर न भटकने दे।

शरणागत पालक! शरणागत की रक्षा करना कर्तव्य है न करना पाप है। अपने शरण आए हुए की रक्षा कर तू केवल कर्तव्य पालन करता है। इसमें तेरी उदारता क्या है? उदारता तो तेरी उसमें है कि जो रक्षार्थी तेरी शरण न हो उनकी तू जन्म-मरण रूपी भारी त्रास से रक्षा करे।

मायावी! प्रहलाद को अग्नि में से बचा कर तूंने कौन बड़ा काम किया। ऐसे दृश्य तो आजकल नाटकों में भी देखने में आते हैं। कई जादूगर भी किसी औषधी की शक्ति द्वारा अपना अंग आग में जलता दिखा देते हैं और बाहर निकालने पर वह जला नहीं लगता। अग्नि की ज्वाला से भी विषम तृष्णा की ज्वाला से जलते हुए की रक्षा कर उसे शान्ति दे।

शान्ति निकेतन! अरे अकेला ही शान्ति का उपभोग कर कहीं तू सदा के लिए शान्त न हो जाना। उसका थोड़ा हिस्सा हम लोगों को भी दे।

जगन्नियन्ता! जब तुम सारी सृष्टि के नियन्ता हो और सब तुम्हारे वश में हैं तो क्यों न जरा मन महाराज को समझा दो जो कभी तो शान्त रहा करें।

स्वामिन्! आज कल संसार में प्रायः सभी स्वामी अपने दासों को ठोकर मारते हैं। वे भी बिना ठोकर खाये प्रसन्न नहीं होते। क्यों मालिक!

क्या तुम मुझे एक ठोकर भी न मारोगे ? अरे क्या मैं एक ठोकर के लिए तरसता रह जाऊंगा। दास मंडली में जब दास अपने मालिकों की ठोकरों की चर्चा करेंगे तब क्या मुझे मौन ही रहना होगा ? नहीं, प्रभो ! ऐसा न करो, एक बार एक ठोकर मारदो, जरा देखूं तो उसमें क्या आनन्द आता है ?

मनोनाश के साधन

[ले० श्री महात्मा राम]

मन एक सावयव और परिणामी द्रव्य है जैसे सुवर्णादिक द्रव्य अनेक प्रकार के कार्य रूप में परिणित होते हैं तैसे मन भी काम क्रोधादिक अनेक वृत्ति रूपमें परिणित होता रहता है। आकाशादिक पांचो भूतों के सात्विक अंश से मन का उत्पन्न होना कहा जाता है। आकाशादिक पांचों भूतों में तम, रज, सत्व तीनों गुण ओत प्रोत होकर रहते हैं, कहीं किसी गुण की न्युनाधिकता भी हो जाती है, सर्वथा अभाव किसी गुणका नहीं होता। मनकी ४ वृत्तियाँ प्रधान हैं उनके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त नाम कहे जाते हैं। किसी वस्तु के चिन्तन करने से चित्त कहा जाता है और बार बार उसका संकल्प विकल्प करने से मन कहा जाता है। ठीक २ निश्चय करने से बुद्धि कही जाती है अहं, अहं, ऐसा अहंकार करने से अहंकार कहा जाता है।

जैसे पाचों भूतों में तीन गुण व्याप्त होकर रहते हैं तैसे मन में भी तीनों गुण व्याप्त रहते हैं इन तीनों गुणों के सुख, दुख, मोह यह धर्म मन के अन्दर उत्पन्न होते रहते हैं। सत्वगुण का धर्म सुख होता है, रजोगुण का धर्म दुःख होता है और तमोगुण का धर्म मोह (अज्ञान) होता है। इसी प्रकार सतोगुण की सुखाकार अनेक वृत्तियें मन में उत्पन्न होती हैं। रजोगुण की दुःखाकार वृत्तियें उत्पन्न होती हैं और तमोगुण की मोह, भय अविचार रूप अनेक वृत्तियां उत्पन्न होती हैं इन सर्व वृत्तियों के निरोध होजाने को मनोनाश कहते हैं।

मन का नाश दो प्रकार का होता है १ अरूप नाश और २ सरूपनाश, मन की वृत्ति और मन दोनों का पुनः उत्थान रहित नाश हो जाना अरूप नाश कहा जाता है और मन के विद्यमान हुए मन की वृत्तियों का नाश होना सरूपनाश कहा जाता है। मनके अरूप नाश से विदेह मुक्तिका लाभ होता है और सरूप नाश से जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती हैं। मनके सरूप नाश हुए पश्चात् ही अभ्यास की उत्कर्षता से अरूपनाश होसका है इसलिये मनके सरूप नाश के साधनों का ही यहां उपयोग किया है।

मन की वृत्तियों के निरोध के उपाय वसिष्ठ भगवान् ने चार प्रकार के कहे हैं।

'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च।
वासना संपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥'

अध्यात्मविद्या की प्राप्ति १ साधु संगम २ वासना का सर्वथा त्याग करना ३ और प्राणायाम करना।

'एतास्तु युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल'।

यह चारों उपाय चित्त वृत्तियों के जय करने के प्रबल कारण हैं।

जिस विद्या से प्रत्यक् आत्मा को ब्रह्म रूप करके जाना जाता है उस विद्या को अध्यात्म विद्या कहते हैं उस अध्यात्मविद्या की प्राप्ति को अधिगम कहते हैं। इस अध्यात्म विद्या की प्राप्ति से मन का जय किया जाता है। और जो पुरुष मंद बुद्धि के कारण अध्यात्म विद्या को प्राप्त नहीं कर सका उसको दूसरा उपाय साधु संगम

बतलाया है। सन्त महात्माओं के सत्संग से तथा उनकी सेवा से मन के शुद्ध होने पर बार बार श्रवण करते हुए शनैः २ अध्यात्म विद्या का लाभ होकर मन का नाश करलेता है। अथवा जो पुरुष कुलमद, धनमद, विद्यामद, आचारमद, इत्यादि मदों से युक्त हुआ सत्संग भी नहीं कर सका उस पुरुष के प्रति वासना का त्याग करना यह तीसरा उपाय कहा है।

किसी विशेष पुण्य के उदय होने पर निर्मल विवेक द्वारा जो उन मदादि रूप मलिन वासनाओं की निवृत्ति है उसको वासना संपरित्याग कहा गया है।

विद्यामद।

इस पृथ्वी पर एक मैं ही पण्डित हूं मेरे समान और कोई नहीं है अन्य जो पंण्डित कहलाते हैं वह कुछ भी नहीं जानते हैं ऐसे मानसिक अभिमान को विद्यामद कहते हैं।

'विद्यामद की निवृत्ति का उपाय।'

विद्या के मद से युक्त आपको पण्डित मानने वाले जो बालाकि, शाकल्य आदिक ब्राह्मण हुए हैं उनका भी अजात शत्रु याज्ञवल्क्यादिक विद्वानों ने पराभव किया है और मनुष्यों से लेकर श्रीदक्षिणा मूर्ति पर्यन्त विद्या का उत्कर्षपना देखने में आता है। सर्व पंडितों के आदिगुरु जो श्रीदक्षिणा मूर्ति सदाशिव हैं उनमें ही सर्व विद्याओं का उत्कर्षपना समाप्त होता है। दूसरे पंडितों में तो किसीमें अधिक है किसी में कम है इसलिये हमको भी कोई अधिक विद्वान् अवश्य पराभव करेगा, इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करने से विद्या मद निवृत्त हो जाता है।

धन मद २।

मैं ही धनवान हूं मेरे समान और कोई धनवान नहीं है ऐसे मानसिक अभिमान को धन मद कहते हैं।

इस धन मद की निवृत्ति निम्नलिखित विवेक से करे।

लक्षपति पुरुष जिस व्यवहार को कर सका है उस व्यवहार को अलक्षपति पुरुष नहीं कर सका अलक्षपति पुरुष का जैसे लक्षपति पुरुष द्वारा पराभव होता है तैसे लक्षपति का भी क्रोड़ पति से पराभव होता है और क्रोड़पति का भी अरबपति से पराभव होता है इसी प्रकार उत्तरोत्तर अधिक धन वालों से थोड़े धन वालों का पराभव होता है मैं किस गिणती में हूं मुझ से अधिक कुबेर के समान बहुत धनवान हैं। इस प्रकार के निरन्तर चिन्तन करने से धनमद निवृत्त होजाता है।

कुलमद ३।

मैं बड़ा कुलीन हूं मेरा कुल सब से ऊंचा है मेरे कुल के समान कोई का कुल नहीं है। ऐसे मानसिक अभिमान को कुल मद कहते हैं।

'कुल को जो मान सो महान् दृढ़ ग्रंथीआहि'।

ऐसे कुल के अभिमान रूप दृढ़ ग्रंथी को विवेक रूप कुल्हाड़ा से शीघ्र ही नष्ट करने का उपाय करे।

भोगे रोग भयं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपालाद् भयम्
माने हानि भयं जये रिपु भयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रेवादिभयं गुणे खल भयम्, कामे कृतान्ताद्भयम्,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

सभी वस्तुयें भय से मिलती हुयी हैं कोई वस्तु भय से खाली नहीं है यदि है तो एक वैराग्य ही भय रहित है बहुत ऊंचे कुल वाले भी समय पाकर नीचे गिर जाते हैं। जैसे हरिश्चन्द्रादि।

'नीच नीच सब तिर गये सन्त चरन लवलीन ।
जाती के अभिमान से डूबे बहुत कुलीन ॥'

'ऊँचे पानी ना टटे नीचे ही ठहराय ।
नीच नीच सब पीगये ऊँचे प्यासे जाय ॥'

कवित्त–काल भगवान बृन्द कलावान कालीसंग ।
खेलत चौसार चार दिगहूं की घर के ॥
चार खाड़ी प्राणी गोटा रैन दिन पासे ।
जोटा मारत अचूत चोटा दंपति अटर के ॥
जहां एक गेह सो अनेक तहां एक रहै ।
एक ते अनेक है क्षणेक एकूं सर के ॥
काल काली खाली कीने लोक लोक पालीसने ।
चोपट न हाली अजे चोप लोक करके ॥

जब काल भगवान् का चक्कर चलता है तब कुलीन और अकुलीन सब को एक ही रास्ते से ले जाता है अन्त में सभी काल भगवान् के भोजन बनते हैं इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करने से कुल मद नहीं रहता ।

आचार मद ४

मैं बड़े आचार से रहता हूं मेरे समान कोई अच्छा आचरण नहीं कर सका मेरा आचरण सब से श्रेष्ठ है और सब अनाचारी हैं मैं ही एक आचार्य हूं । इत्यादिक आचार के अभिमान युक्त मन वाला होने से आचारमद कहा जाता है इस आचार मद की निवृत्ति भगवद्भक्ति से होती है ।

चतुराई चूल्हे पड़ो भट्टी पड़ो अचार ।
तुलसी हरि की भक्ति विन चारों वरण चमार ॥

श्रुतिः-अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पंडितंमन्यमानाः जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।'

आत्म विमुख अविद्या रूप कर्मों में वर्त्तमान अपने आप को धैर्यवान् पंडित मानने वाले अभिमानी मूढ़ पुरुष निंदित गति को प्राप्त होते हैं जैसे अन्धे के पीछे चलने वाला अन्धा पुरुष कहीं अवश्य ही डूबेगा और जो पुरुष कर्म कांड के अभिमान से अलग है वह पुरुष नम्रतादिक गुण संपन्न होकर परम पद प्राप्त करलेता है ।

विद्या धन कुल रूप मद प्रभुता यौवन नारि ।
ये बाधक हरि भक्ति के कहँ बुधि वेद विचारि ॥

इस प्रकार के विवेक द्वारा विद्यामद धन मद कुलमद आचार मद इन सब की निवृत्ति होकर साधु संगमादिकों के द्वारा मनोनाश होता है । अथवा जो पुरुष उपरोक्त उपायों में असमर्थ होता है किसी भी उपाय को नहीं कर सका उसके लिये प्राणस्पन्द का निरोध रूप उपाय बतलाया है ।

प्राणायाम ।

प्राणायाम दृढाभ्यासाद्युक्त्या च गुरुदत्तया ।
आसनाशनयोगेन प्राणस्पन्दे निरुध्यते ॥

योगाभ्यास करने वाले गुरु की बतलाई हुई युक्ति से किया हुआ प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास और आसनयोग तथा अशनयोग से प्राणों की गति का निरोध होता है ।

प्राणायाम की विधि ।

'प्राणायाम 'पूरक' 'रेचक' कुम्भक' इस भेद से तीन प्रकार का होता है ।

बाह्य वायु को बाम नासिका से अन्दर खीचने को पूरक कहते हैं । और दाहिनी नासिका से अन्दर खेंची हुयी वायु बाहर को त्याग करना रेचक कहा जाता है । और प्राण वायु का अन्दर रोकना अन्तर कुम्भक कहा जाता है बाह्य वायुका बाहर रोकना बाह्यकुम्भक कहा जाता है । १६ मात्रा से पूरक करै ३२ मात्रा से रेचक करै और ६४ मात्रा से कुम्भक करना, बतलाया है अर्थात् पूरक से द्विगुणा रेचक करै और रेचक से द्विगुणा कुम्भक करै । मात्रा काल परिमाण को कहते हैं । अपने

घुटने पर हथेली फेर कर चुटकी बजावे इतने काल को मात्रा कहते हैं। इस प्रकार प्राणायाम के दृढ़ अभ्यास से योगी मनोनाश करलेता है।

श्रुति में भी मनोनाश के लिये प्राणायाम का कथन किया है।

योगी दो प्रकार का होता है एक दैवी संपत् वाला और दूसरा आसुरी संपत् रूप मलिन वासना वाला। दैवी संपत् वाले योगी को श्रुति ने पूर्व मंत्र द्वारा राजयोग का उपदेश किया है।

मंत्रः-'त्रिभिरुन्नतंस्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि'॥

यह विद्वान् योगी पुरुष एकान्त देश में पवित्र आसन पर अपने शरीर को कटि, ग्रीवा, प्रष्ठ भाग को शम स्थापन करै और अपने हृदय में मन सहित सर्व इन्द्रियों को निरोध करके 'अहं-ब्रह्मास्मि' इस प्रकार का निरन्तर चिन्तन करै। ऐसे ब्रह्म चिन्तन रूप नौका द्वारा वह योगी भय की प्राप्ति करने वाले माया रूप नदी के प्रवाह को पार करै। दूसरे आसुरी संपत् रूप मलिन वासना वाले योगी को दूसरे मंत्र से श्रुति ने हठ योग का कथन किया है।

मंत्रः-'प्राणान्प्रपीडयेह सुयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत। दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेदप्रमत्तः'।

युक्ताहार विहार चेष्टा वाला योगी पुरुष पूर्वोक्त पूरक, रेचक, कुम्भक क्रम से प्राणायाम करके प्राणों की गति का निरोध करै। तत्पश्चात् जैसे प्रमाद रहित सारथी दुष्ट अश्वयुक्त रथ को बलात्कार से श्रेष्ठ मार्ग में धारण करता है तैसे प्रमाद रहित विद्वान् योगी दुष्ट इन्द्रिय मन को विषयों से निवृत्त करके आनन्द एक रस ब्रह्म में धारण करै।

आसन योग।

सूत्रः-'तत्र स्थिर सुखमासनम्' १

प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् २

ततो द्वंद्वानभिघातः ३

इन तीन सूत्रोंसे भगवान् पतञ्जलि ने आसन योग का कथन किया है सूत्रोंका अर्थ इस प्रकार है।

प्रथम सूत्र में कहा है कि चंचलता रहित अचल और सुख की प्राप्ति करने वाला जो आसन होवे सो आसन ही योग का अंग कहा है। ऐसा आसन प्रयत्नशैथिल्य अनन्त समापत्ति इन दो साधनों से सिद्ध होता है।

प्रयत्न शैथिल्य।

लौकिक तथा वैदिक कर्मों के त्याग का नाम प्रयत्न शैथिल्य है कारण यह है कि लौकिक व्यवहार धनोपार्जनादि और वैदिक यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करना इत्यादिक कर्मों में प्रवृत्त पुरुष का आसन कदाचित् भी स्थिर नहीं हो सका इसलिये सर्व कर्मों का त्याग करके केवल आसन के अभ्यास को करै उसका यह ही कर्म है।

अनन्त समापत्ति।

जैसे अनन्त भगवान शेषनाग की आकृति को धारण करके अपने सहस्र फनोंके ऊपर इस पृथिवी के समस्त भार को धारण करके वर्तमान हैं तैसे 'मैं अनन्त भगवान् का स्वरूप भूत होकर इस पृथिवी के भारको धारण कर रहा हूं, इस प्रकार के निरन्तर चिन्तन करने को अनन्त समापत्ति कहते हैं। इस अनन्त समापत्ति से आसन के प्रतिबन्ध जो विघ्न होते हैं वह निवृत्त हो जाते हैं।

उपरोक्त साधनों द्वारा आसन के अभ्यास करते करते आसन का जय होता है (तत्पश्चात्

शीतोष्णादि द्वन्द्वों (दुःखों) से कोई बाधा नहीं होती यह आसन योग का फल है।

अपूर्ण

ईश-स्तुति।

[ले० श्री ला० गौरीशंकर गुप्त]

(१)

जय जय यदुनन्दन असुरनिकंदन, कंस विमर्दन पाहि विभो
हम शरण तुम्हारी, संकट भारी विनय हमारी सुनो प्रभो ॥
हे असुरारी नन्दक धारी, गोहितकारी कृपा करो।
जयपूर्ण नरोत्तम नित्य सनातन, भक्ति दानकर भीति हरो ॥

(२)

गीता गायक अर्जुन पालक, विश्वरूप दिखलाओ।
त्रिभुवन भर्ता सब जग कर्ता, हमें न तुम विसराओ ॥
नन्द के नन्दन दुष्ट निकन्दन, भक्ति योग सिखलाओ।
अभय दीजिये शरण लीजिये, प्रेम मार्ग बतलाओ ॥

(३)

कष्ट निवारण सुख के कारण, मानस कञ्ज खिलाओ।
भव भय हारी जग सुख कारी, हमको नित्य हंसाओ ॥
सम्पति दाता गुण-गण धाता, हमको भक्त बनाओ।
करुणा-वरुणा-लय जग शरणा, अपना नाम धराओ ॥

महात्माओं के वाक्य।

सब से बड़ा आदमी वह है जो सब से अधिक प्रेम का भण्डार है।

जिस प्रेम में शिकायत हो वह प्रेम नहीं है। प्रेम हानि लाभ को नहीं जानता, प्रेम जीवन का सार है।

अपने आप को भूल जाना ही परमात्मा बन जाना है।

अहंकारी पुरुष ही कहा करता है कि मैं प्रेम करता हूं।

अपने शत्रुओं से प्रेम करो फिर तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा।

दुष्ट को ठीक करना उस पर परम दया करना है।

मनुष्य की परीक्षा लेना परमात्मा की परीक्षा लेना है।

परीक्षा करने में सदैव अन्याय करना पड़ता है।

अगर तुम परमात्मा को किसी विशेष स्थान में नहीं देख सकते तो उसका कारण यह है कि वह हर जगह मौजूद है।

परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ पूजा परमात्मा के तुल्य हो जाना है।

श्रद्धालू मानता है पर मांगता नहीं।

श्रद्धा का अर्थ यह है कि मनुष्य सब कुछ छोड़ने को तैयार रहे।

विश्वास सब से बड़ी गलती है परन्तु यह ऐसी बड़ी गलती है जो हमको उस परमात्मा से मिला देती है।

परमात्मा को कोई नाराज नहीं कर सकता। क्योंकि वह नाराज नहीं होता।

जितना मनुष्य क्षुद्र होता है उतना ही वह नाराज होता है।

यदि तुम सब लोगों को समझने की समता रखते हो तो तुम सब को क्षमा कर सकते हो।

जितनी अधिक कठिनाई होती है उतनी ही अधिक सफलता होती है।

जो गिरता है सो चढ़ता है।

जहां तुम गिर पड़ो वहां खोदो तुमको

खजाना मिलेगा।

भलाई हम उसे कहते हैं जिस से हम खुश होते हैं और बुराई हम उसे कहते हैं जिससे दूसरे खुश होते हैं।

जो बहुत दुष्ट होते हैं उनको अपनी दुष्टता का ज्ञान नहीं होता।

जहाँ प्रेम नहीं है वहीं नरक है। नरक वहीं है जहां 'मैं' है।

स्वर्ग वहां है जहाँ मैं और तू एक है।

जो अपने लिये सब से छोटा स्थान लेता है वही सब से बड़ा आदमी है।

सब से बड़ा बनना चाहते हो तो बालक की भान्ति सरल बनो।

यदि मनुष्य परमात्मा के दर्शन करेगा तो वह उसको बालक के रूप में दिखाई देगा।

तपस्वी आविसकरणी के वचनामृत

[ले० श्री कृष्णगोपाल जी माथुर]

(१)

भले ही तुम इस लोक के जैसी तो क्या, पर स्वर्गलोक के देवों जैसी ईश्वरोपसना क्यों न करो, परन्तु जब तक तुमको उस पर श्रद्धा नहीं होगी तब तक तुम्हारी उपासना मान्य होने की नहीं।

(२)

जिस मनुष्य का इन तीन वस्तुओं से प्रेम है, उस मनुष्य से नर्क ज्यादा दूर नहीं है। १-अच्छे २ भोजन, २-अच्छे २ वस्त्र और ३-श्रीमानों का सहवास।

(३)

जिसको ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है, उससे कुछ भी अज्ञाना नहीं रहा। जिस ने परमात्मा को जान लिया है, उसने जानने योग्य सब ही कुछ जान लिया है।

(४)

बाहरी एकान्तता सच्ची एकान्तता नहीं है। मन में चिन्ता या शंका का प्रवेश न हो, यही सच्चे से सच्चा एकान्त है, और इसी एकान्त में जो रहते हैं वे ही सच्चे एकान्ती और संग रहित हैं। जब द्वैतभाव जाग्रत होता है, तभी शैतान ठग सकता है। हृदय को सदा हाथ में रखना चाहिये। यदि हृदय हाथ में होगा तो उसमें किसी को भी घुसने का रास्ता नहीं मिलेगा।

(५)

जिन्हें उच्चता प्राप्त करनी हो, वे विनयी बनें। जो पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहें, वे सच्चे बनें। जिनको गौरव प्राप्त करना हो, वे ईश्वर से डरते रहें। जो महत्त्व प्राप्त करना चाहें, वे धैर्यवान् बनें। जिन्हें शान्ति प्राप्त करने की इच्छा हो, वे वैराग्यवान् होवें और जो सम्पत्ति प्राप्त करना चाहें, वे बड़ों का आश्रय लें। *

ज्ञान और भक्ति का तारतम्य।

गतांक से आगे।

[ले० श्री भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी रिटायर्ड जज]

प्यारे सत्संगी भ्राताओ! गत अंक में ज्ञान और भक्ति के महत्व का भेद एक उदाहरण द्वारा आपकी सेवा में निवेदन किया गया था। जैसे किसी छत्रपति नरेश के बनाये हुए अद्भुत नगर के

* "मुस्लिम महात्माओं से।"

यात्रियों के लिये तीन मार्ग नियत किये गये हैं ऐसे ही भगवत् धामकी प्राप्ति के लिये उत्कंठित जनों के लिये कर्म ज्ञान और उपासना तीन ही मार्ग नियत हैं और जैसे अद्भुत नगर का पता और वहां का मार्ग स्वयं उसके निर्माता नरेश का बताया हुआ अधिक विश्वास के योग्य है ऐसे ही कर्म उपासना ज्ञान इन तीनों भगवत् धाम प्राप्ति के मार्गों में स्वयं भगवान् के श्रीमुख के वचन सर्वोत्तम प्रमाण समझे जायंगे।

(२) अब एक यह बात ध्यान में लाने योग्य है कि ज्ञान नाम जान लेने का है और उपासना (उपसमीपे-आसनं स्थिति) नाम समीप बैठने का है। किसी गुणज्ञ सर्व समर्थ महाराजा के रूप गुण आदिके ज्ञान लेने मात्र से वैसा लाभ और आनन्द नहीं मिल सकता जितना उसके पास पहुंच कर उसके दर्शन और सेवन से मिलना संभव है। इस युक्ति से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति (उपासना) का गौरव सिद्ध हो गया।

(३) तीसरे ज्ञान से मुक्ति होती है वो भी सायुज्य मुक्ति-समुद्र के बिन्दु का समुद्र में मिल जाना तद्रूप हो जाना ज्ञानियों की परम साध्य मुक्ति कही जाती है। उसे उपासक लोग बहुत नीचे दरजे की मान कर कदापि स्वीकार नहीं करते। वे तो इष्टदेव के समीप स्थिति और उसकी सेवा को मुख्य आदरणीय स्वीकार करते हैं।

मद्भक्ता नापवर्गं न च विधिपदवीं शंभुसख्यापि नैव।
वाञ्छन्त्यङ्घ्र्योः सुभक्तिं मम पदयुगले को रसोऽयं विचित्रः॥
चित्ते स्वीये विचार्यैव हि यदुकुले कृष्ण संज्ञो हि भूत्वा।
पादाङ्गुष्ठं पिबन् वो हरतु स दुरितं रक्षताच्छ्रीनिवासः॥

मेरे भक्त न मोक्ष चाहते हैं न ब्रह्माजी की पदवी न शिवलोक केवल मेरे चरणों की भक्ति ही चाहते हैं। न जाने मेरे युगल चरणों में ऐसा कौन सा विचित्र अलौकिक रस है। ऐसा चित्तमें विचार कर भगवान् ने यदुकुल में अवतार लेके बालक कृष्ण का रूप धारण किया और बाल मुकुंद होकर अपने पैर के अंगूठे को मुख में लेकर चूसते हैं। ऐसे हरी तुम्हारी रक्षा करें।

प्रयोजन यह निकला कि भगवद्भक्त ज्ञानियों की मुक्ति न चाह कर भगवान् के चरण कमलों की भक्ति ही चाहते हैं। तो मुक्ति जो ज्ञान का फल रूप है भक्ति के आगे तुच्छ वस्तु ठैरी। कारण इसका स्पष्ट येही विदित होता है कि आनन्द रूप ब्रह्म में समाजाने से आनन्द का आस्वादन नहीं होता।

(४) देह का जब अन्त होता है तो वात पित्त कफ तीनों कुपित होकर मनुष्य के दिमाग को बेकार कर देते हैं। त्रिदोष में आकर उसमें विचार की शक्ति नहीं रहती। और यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि 'अन्ते मतिः सा गतिः' अन्त समय में जैसी मति वैसी ही गति होती है।

यंयं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः॥ (गीता)

यदि अन्त काल में ऐसी वृत्ति हो कि मैं तीनों शरीर से भिन्न आत्मा ब्रह्म रूप हूं तो ज्ञानी अवश्य जन्म मरण के बन्धन से छूट कर मुक्त हो सके। परन्तु उस समय जब चित्त ही ठिकाने नहीं रहता तो ऐसी वृत्ति क्यों कर हो सकती है। और भक्तों के लिये स्वयं श्रीकरुणाकर भक्त वत्सल भगवान् उस समय संभाल कर सद्गति बख्श देते हैं। इसमें श्रीमुख की यह आज्ञा प्रमाण है:-

"यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च विस्मरेत्।
तर्हि स्मराम्यहं भक्तं नयामि परमां गतिम्॥"

यह आदि पुराण में भगवान् ने आज्ञा की है। अब ध्यान देने का स्थान है कि स्वयं ब्रह्म बनने

में लाभ है या शरणागति में। गीता में भगवान् की यह भी प्रतिज्ञा है कि:-

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

अर्थात् मेरे अनन्य भक्त जो मेरा निरन्तर चिन्तवन और आराधन करते हैं उनको योग और क्षेम मैं पहुंचाता हूं। (जो वस्तु प्राप्त नहीं उसे प्राप्त कराना योग है और प्राप्त की रक्षा करना क्षेम है) जब भक्त के लिये योग और क्षेम के जिम्मेदार भगवान् हो चुके और अठारवें अध्याय गीता में यह भी आज्ञा कर चुके हैं कि सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आजा मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा तू किसी बात का सोच न कर तो इससे अधिक जीवको और क्या चाहिये।

ऊपर के श्लोक में जो वहाम्यहम् शब्द आया है इस पर एक लेखक पण्डित को शंका हुई थी कि योगक्षेमंवहाम्यहम् की जगह योग क्षेमंददाम्यहम् चाहिये, वहाम्यहं अशुद्ध प्रतीत होता है क्यों कि वहाम्यहम् का अर्थ है सिरपर लादकर पहुंचाना, सो भगवान् क्या सिर पर लाद कर कोई वस्तु भक्त के पास पहुंचाते हैं! वो तो देते हैं इसलिये ददामि प्रयोग सही है ऐसा विचार करके उसने वहामि के शब्द पर हड़ताल लगाकर उसके स्थान में ददाम्यहं लिख दिया। इस विचार में दो पहर का समय हो गया पंडित के मन में भय था कि भगवद् वचन में न्यूनाधिक्य करने का अपराध कहीं न बन जाय। नियम उसका यह था कि लिखाई के जो दाम आते उनकी सामग्री ख़रीद कर ले जाता तब पंडितानी रसोई बनाती थी। उस दिन उसके हाथ लिखाई का कुछ नहीं आया डरता हुआ घर पहुंचा पंडितानी स्वभाव की कर्कशा थी। परन्तु गृह द्वार पर पहुंच कर उसने किवाड़ों की छेकड़ से देखा कि चूल्हा जल रहा है और बहुत सा उपस्कर रखा हुआ है। जब किवाड़ खोल कर अन्दर गया तो देखता क्या है कि चूल्हे पर चावल दाल पक रहे हैं और बहुत सा उपस्कर पकवान कई प्रकार की मिठाई मेवा, आटा, शाक आदिक बर्तनों में भरे धरे हैं। अब तो पण्डित के आश्चर्य का ठिकाना न था उसने स्त्री से पूंछा-यह सामग्री कहांसे आई? कौन लाया, स्त्री झुंझला कर बोली क्या भांग पीकर उन्मत्त हो आये। तुम्हीं ने तो मजूर के सिर पर टोकरे में यह सब पदार्थ भेजे और मुझ से भोले बन कर प्रश्न करते हो। पंडित चौंक कर बोला हैं क्या कहती है मैंने कब भेजा सच बता कौन लाया। पण्डितानी अधिक क्रोध करके कहने लगी। आज तुम्हें क्या होगया तुम्हीं ने तो मजूर के हाथ यह सब पदार्थ टोकरा भरक भेजे और यह कहलाया कि हमारी लिखाई के दाम एक सेठ पर बहुत चढ़े हुवे थे आज उसने सब चुका दिये, और अब भोले बन कर कहते हो मैंने नहीं भेजे, और किसी को क्या प्रयोजन था कि इतनी सामग्री यों ही भेज देता। और क्यों जी तुम ऐसे कठोर कैसे बन गये तुमने उस मजूर बिचारे को बिना अपराध सताया उसकी छाती में छुरी मारदी लकीर लोहू भरी उसने मुझे दिखाई थी। बस इतना सुनते ही तो पंडित जी के होश उड़ गये। वो कुछ न समझे और चुप चाप अपनी भजन कोठरी में किवाड़ बन्द करके बैठ गये पंडितानी रसोई में लग गई, अब आगे का हाल सुनिये।

पंडित जी की आंख झपक गई चिन्ता करतेर तन्द्राने आ दबाया। थोड़ी ही देर गुजरी थी उस कोठरी में अलौकिक प्रकाश छा गया। इनकी तन्द्रा मिट गई देखते क्या हैं-करुणा अवतारी जनसुखकारी भव भयहारी भक्त वत्सल श्री माधव मुरारी

बाँके बनवारी गिरवरधारी बिहारी जी सामने खड़े हैं। पंडित सट पटा के उठ खड़ा हुआ और विह्वल होके प्रभु के चरणों पर गिर पड़ा। ऐसी झांकी जो ब्रह्मादिकों को दुर्लभ है कभी न निहारी थी। कंठ गद् गद् हो गये बोला किससे जाय, आंसुओं से सरकार के चरण कमल तर कर दिये और कुछ न बन पड़ा। तब सरकार ने कुछ पीछे हटके बड़े मधुर बचनों से आज्ञा की।

अरे पंडित तू ने मेरे बचन पर हड़ताल भरी कलम फेर के वहाम्यहं शब्द को मिटाया वह मेरी छाती में छुरी सी लगी रेखा खिच गई अरे वो मजूर मैं ही हूं। तू ने नहीं जाना कि मैं भक्तों के लिये क्या नहीं करता।

दोहा–भक्त हमारे पग धरैं तहां धरूं मैं माथ।
लारे लागो ही फिरूं कभी न छोड़ूं साथ॥
भक्तन को ऋणिया रहूं यही हमारो सूल।
चार मुक्त दयी ब्याज में दे न सकूं अब मूल॥
समदर्शी मैं हूं यदपि प्रिय अप्रिय ना कोइ।
जो वैरी मम भक्त को मेरो वैरी सोइ॥
कोट करैं अपराध मम हृदे न लाऊं ताय।
अपराधी मम भक्त को सकूं न ताहि खाय॥
वे निस दिन मोसों भजैं मैं उनके आधीन।
सहूं बिछोह न एक पल जैसे जल बिन मीन॥

इतना फरमा कर भगवान् अन्तर्धान होगये, पंडित को उस मनोहर झांकी से हर्ष और अपनी मूर्खता से पश्चात्ताप ने व्याकुल कर दिया। प्रेमोन्माद ने मस्तक में घर कर लिया उस दिन से लेखक वृत्ति त्याग भजन में तत्पर हो गया।

बोलो भक्तवत्सल भगवान् की जय हो जय हो!

अवधूतोपाख्यान

[ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम]

प्राचीन काल में एक बार धर्म को जानने वाले राजा यदु ने स्वच्छन्द विचरते हुए एक तरुण अवस्था वाले विद्वान् अवधूत को देख कर पूछा।

हे ब्रह्मन्! कर्तापन के भाव से रहित ऐसी विमल बुद्धि आप को कहाँ से प्राप्त हुई जिसके कारण विद्वान् होने पर भी आप असंग रूप से बालक की समान विचरते हैं। प्रायः लोग आयु, यश, तथा वैभवादि की कामना से ही धर्म, अर्थ, व काम में प्रवृत्त होते हैं परन्तु आप तो समर्थ, विद्वान् विवेकी, सुन्दर और मिष्ट भाषी होने पर भी जड़ के समान क्रियाहीन और निरीह हैं। संसारी जीव काम लोभ की दावानल से जल रहे हैं किन्तु आप तो गंगा में स्थित गजराज के समान उससे सर्वथा मुक्त हैं। आप संसार स्पर्श से रहित आत्मा में स्थित हैं। कृपया अपने परमानन्द का कारण कहिये।

महाराज यदु के इस प्रकार पूछने पर अवधूत बोले-हे राजन्! मेरे ऐसे बहुत से गुरु हैं जिन से मैंने अपनी बुद्धि से शिक्षा ली है। उन से बुद्धि पाकर मैं मुक्त हुआ पृथ्वी पर घूमता हूं उनके नाम इस प्रकार हैं:–

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः॥
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः।
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, पतङ्ग, मधुमक्षिका, हाथी, मधुहारी, (शहद ले जाने वाला) हरिण, मीन

(मछली) पिंगला-वेश्या, कुरर-पक्षी, बालक, कुमारी, तीर बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भ्रमर (भौंरा)। इन चौबीस गुरुओंके आश्रय से मैंने अपने को शिक्षित बनाया है। हे राजन! मैं ने अब जिस से जो कुछ सीखा है सो कहता हूं ध्यान से सुनः-

१-पृथ्वी पर नाना प्रकार के आघात और उत्पात होते हैं परन्तु वह सबको सम भावसे सहती हुई शान्त रहती है। इसी प्रकार दैवी माया से प्रेरित जीव यदि विद्वान् को कष्ट पहुंचावें तब भी विद्वान् को चाहिये कि वह अपने मार्ग से चलायमान न हो। यह धैर्य व्रत मैंने पृथ्वी से सीखा है। इसी प्रकार जैसे पर्वतों की सारी चेष्टायें (वृक्ष, तृण, झरने आदि) और वृक्षोंकी सब सम्पत्ति (फल पुष्पादि) परोपकार के लिये होती हैं उसी प्रकार साधु को इन से भी परोपकार की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

२-प्राणवायु जैसे केवल आहार की ही इच्छा रखता है किसी प्रकार के रूप रस की आवश्यकता नहीं रखता इसी प्रकार योगी को हितकर मिताहार की ही इच्छा से भोजन करना चाहिये। जिह्वा के स्वाद से मीठा, खट्टा की इच्छा न करे और जैसे बाह्यवायु सर्वगामी होता हुवा भी जैसे स्वरूप से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार विषयों को ग्रहण करता हुआ भी उनके गुण दोष में लिप्त न हो। गन्ध को वहन करता हुवा भी वायु जैसे शुद्ध रहता है उसी प्रकार इस पार्थिव शरीर में रह कर इस के गुणों का आश्रय होकर भी इस में आसक्त न हो। इस प्रकार प्राणवायु से संयम तथा बाह्यवायु से असंगता की शिक्षा ली है।

३-ब्रह्म और आत्मा का समन्वय (ऐक्य) होने का कारण होने से स्थावर जंगम सब में व्याप्त हुवा भी आत्मा आकाशवत् अवयव रहित एवं उन २ शरीरों के संग से रहित है ऐसी भावना करे, तथा तेज, जल, अन्नमय पदार्थों से एवं वायु से प्रेरित मेघादि से आकाश जैसे अछूता रहता है इसी प्रकार आत्मा भी काल कृत गुणों से पृथक् है। यह आकाश से सीखा है।

४-जैसे जल स्वभाव से स्वच्छ, स्निग्ध, मधुर होता है ऐसे ही मुनि दर्शन, स्पर्श, कीर्तन से सब को पवित्र करता रहे। यह जल से सीखा है।

५-(अग्नि से मैंने यह शिक्षा ली है) अग्नि के समान तेजस्वी तपोजन्य दीप्ति युक्त असह्य ताप वाला, उदर ही पात्र रक्खे। जो कुछ मिले उदर में रख ले अधिक संचय न करे सर्व भक्षी होने पर भी योगी पुरुष निर्मल रहे। अग्नि जैसे काष्ठादि में गुप्त तथा कहीं प्रकट होता है उसी प्रकार कहीं गुप्तचर रहे, कहीं प्रकट दर्शन देता रहे। श्रेय की इच्छा रखने वालों से उपासित रहे तथा भिक्षा देने वालों के अतीत और आगामी सब पापों को भस्म करता रहे। ऐसा विचार करे कि जैसे भिन्न २ उपाधियों (काष्ठ लोहादि) में प्रविष्ट हुवा अग्नि तद्रूप प्रतीत होता है ऐसे ही विभु आत्मा अपनी माया रचित भिन्न २ शरीरों में उपाधियों के अनुसार चेष्टा करता है।

६-(चन्द्रमा से जो मैंने शिक्षा ली है सो सुनो) काल के फेर से जैसे चन्द्रमा की कलायें घटती बढ़ती हैं ऐसेही जन्म से मृत्यु तक शरीर की ही युवा वृद्धत्व आदि अवस्थायें घटती बढ़ती होती हैं आत्मा की नहीं अग्नि की शिखा जिस प्रकार निरन्तर क्षण क्षण में उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं किन्तु यह भेद प्रतीत नहीं होता उसी प्रकार जल प्रवाह के समान वेगवान् काल से भूतों की उत्पत्ति और नाश प्रतिक्षण होते रहते हैं परन्तु दृष्टिगोचर नहीं होते।

७-(मैंने सूर्य से यह सीखा है-) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से भूमि के जल को खींच कर समयानुसार बरसा देता है उसी प्रकार योगी गुणानुवर्तिनी इन्द्रियों के द्वारा त्रिगुणमय पदार्थों को ग्रहण करता है तथा समयानुसार उदारता पूर्वक उनका त्याग भी कर देता है। तथा योगी यही विचारता है कि जैसे जल भरे हुए पात्रों के भेद से एक ही सूर्य नाना रूप प्रतीत होता है ऐसे ही व्यक्तिगत उपाधियों के भेद से स्थूल बुद्धि वालों को एक ही आत्मा अनेक रूप दीखता है।

८-(कबूतर से यह शिक्षा ली है कि-) कभी किसी में अधिक स्नेह न करे अन्यथा कबूतर की तरह दुःखी होना पड़ता है। कपोत की आख्यायिका इस प्रकार है कि एक कबूतर बन की झाड़ी में घोंसला करके अपनी स्त्री के साथ रहता था। वे दोनों दम्पति प्रेम पाश में बन्धे हुये दृष्टि से दृष्टि अंग से अंग और मन से मन मिलाये रहते थे। वे उस प्रदेश में साथ २ ही सोते, बैठते, खाते, पीते घूमते-खेलते और बात चीत करते थे। हे राजन्! जब २ कबूतरी जिस इच्छा को करती उसका परम प्रेम भाजन कबूतर कष्ट उठा कर भी उसको पूर्ण करता था। समय के अनुसार कबूतरी को गर्भ रहा और उसने बहुत से अंडों को उत्पन्न किया, कालान्तर में भगवान् की कृपा से उनमें सुकोमल अंग वाले बच्चे उत्पन्न हुये। वात्सल्य प्रेम की महिमा सबसे बड़ी है दम्पतिने बच्चों की प्यारी कलरव सुन कर परम प्रेम में मग्न होकर उनका लालन पालन किया तथा परम सुख का अनुभव किया इस प्रकार मायापति की माया से मोहित हुये दोनों दम्पति परम प्रेम बन्धन में बन्धे हुये उनके लालन पालन में लगे हुये थे। एक दिन वे दोनों कबूतर और कबूतरी चारा लाने के लिये गये और बहुत देर तक उस बन में भटकते रहे। इधर अकस्मात् एक बन वासी व्याध ने उनके बच्चों को जाल बिछा कर पकड़ लिया। इतने में अपनी सन्तान के पोषण में अति उत्सुक कबूतर कबूतरी आये और घोंसले को खाली देखा। कबूतरी ने अपने बच्चों को जाल में फंसे हुए चिल्लाते देख कर स्वयं भी विलपती हुई उनके पास दौड़ गई तथा मोहमें बंधी हुई जाल में ही जा फंसी। तब तो यह कबूतर अपने प्राणों से भी प्यारे बच्चों व भार्या को जाल में फंसे देख अति दुःखित हो विलाप करने लगा।

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः।
अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहक्षैवर्गिको हतः॥

अहो! मुझ दुरात्मा मन्दमति पर कैसा वज्राघात हुवा है जो अर्थ, धर्म, काम रूप त्रिवर्ग का साधन मेरा बना बनाया घर बिगड़ गया! अभी तो मैं संसार सुख से भी तृप्त नहीं हुवा था और न मैंने कुछ परलोक का साधन ही किया था। हाय! मेरी सब प्रकार योग्य आज्ञाकारिणी पतिव्रता पत्नी भी मुझे इस सूने घर में अकेला छोड़ कर अपने भोले भाले बालकों के साथ स्वर्ग को सिधार रही है। स्त्री और बच्चों से शून्य हुवा अब मैं इस शून्य घर में किस लिये प्राणों को रखने की इच्छा करूं। इस प्रकार जाल में फंस कर मृत्यु पाश से छूटने के लिये छटपटाते हुये स्त्री और बच्चों को देख कर वह दीन बुद्धिहीन कबूतर स्वयं भी उसी जाल में जा फंसा। तब उस कुटुम्बी कबूतर व कबूतरी को पाकर अपने को कृतकृत्य मान कर वह व्याध उन्हें अपने घर ले गया। इसी प्रकार जो व्यक्ति कुटुम्बी अशान्त चित्त निरन्तर द्वन्द्व में ही पड़े रहते हैं तथा अपने कुटुम्ब के ही पालन पोषण में लगे रहते हैं वे मोह बन्धन में फंस कर दीन हुये पक्षी की भांति दुख भोगते हैं। खुले हुये

मुक्ति द्वार के समान इस मनुष्य देह को पाकर जो उस कबूतर की तरह मोहमें आसक्त हैं वे 'आरूढ़च्युत' मनुष्य देह रूपी पेड़े पर चढ़ कर विषयादि गर्त में फिर गिरे हुये हैं।

अपूर्ण

नाम की महिमा

अगुण सगुण दोउ ब्रह्म स्वरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा
मोरे मत बड़ नाम दुहूंते, किये जेहि युग निज बस निज बूते

निर्गुण और सगुण ये दोनों ब्रह्म के स्वरूप हैं एवं अकथनीय, अतिगम्भीर, आदि रहित तथा उपमा रहित हैं। परन्तु मेरे मत से नाम दोनों से बड़ा है क्योंकि जिस नाम ने अपने बल से निर्गुण और सगुण दोनों को अपने वश में कर रक्खा है।

प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जनकी।
कहहुं प्रतीति प्रीति रुचि मनकी॥
एक दारुगत देखिय एकू।
पावक सुगसम ब्रह्म विवेकू॥

बड़े चतुर जन जनों के मन की जानते हैं (इसलिये) मैं अपनी प्रतीति, प्रीति और मनकी रुचि कहता हूं। जैसे एक अग्नि तो लकड़ी में व्याप्त हो रही है और एक प्रत्यक्ष प्रकट दीख रही है वैसे ही ब्रह्मज्ञान है अर्थात् लकड़ी में व्याप्त अग्नि की तरह निर्गुण है एवं प्रकट अग्नि की तरह सगुण है।

उभय अगम युग सुगम नामते, कहहुं नाम बड़ ब्रह्मरामते।
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी, सत चेतन घन आनन्दराशी॥

यद्यपि निर्गुण और सगुण दोनों के साधन कठिन हैं तथापि नाम से दोनों की प्राप्ति होनी सुगम है, किन्तु मैं तुलसीदास तो निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण राम इन दोनों से ही नामको बड़ा कहता हूं। एक अविनाशी, सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, आनन्द की राशि परब्रह्म सब में व्यापक है।

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी सकल जीव जग दीन दुखारी
नाम निरूपण नाम यतनते, सो प्रकटत जिमि मोल रतनते॥

यही परिपूर्ण विकार रहित प्रभु सब के हृदय में विराजमान है तो भी सब जीव जगत में दीन और दुःखी होरहे हैं। नामका वास्तविक स्वरूप नाम-स्मरण करने से प्रकट होता है जैसे रत्न से रत्न का मूल्य प्रकट हो जाता है।

निर्गुण ते इहि भांति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहऊं नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार॥

इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से नामका प्रभाव बड़ा और अपार है, अब अपने विचार के अनुसार भगवान् राम से भी नाम को बड़ा कहता हूं।

राम भक्तहित नरतनु धारी, सहि संकट किय साधु सुखारी।
नाम सप्रेम जपत अनयासा, भक्त होहिं मुद मंगल वासा॥

श्रीरामचन्द्र जी ने तो भक्तों के हित के लिये मनुष्य का शरीर धारण किया और संकट को सह-कर साधुओं को सुखी किया। किन्तु जो व्यक्ति नाम को प्रेम से जपते हैं वे भक्त तो अनायास ही हर्ष और मंगल के स्थान हो जाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी, नाम कोटि खल कुमति सुधारी
ऋषिहित राम सुकेतु सुताकी, सहित सेन सुत कीन्ह विवाकी

श्रीराम जी ने एक तपस्वी की स्त्री (अहल्या) का उद्धार किया है, किन्तु नामने करोड़ों दुष्टों की बुद्धि को निर्मल बना दिया। श्रीरघुनाथ जी ने (विश्वामित्र आदि) ऋषियों के हित के लिये ताड़का और उसके पुत्र सुबाहु मारीच आदिका उनकी सेना के सहित संहार करा है।

सहित दोष दुःख दासदुरासा।
दलइ नाम जिमि रवि निशिनासा॥

भंजेउ राम आप भव चापू।
भव भय भञ्जन नाम प्रतापू॥

नाम, भक्तों के दुःख और दोषों सहित दुराशा को ऐसे नाशकर देता है जैसा रात्रि के अन्धकार को सूर्य। स्वयं रघुनाथ जी ने तो शंकर का धनुष तोड़ा है परन्तु नामका प्रभाव देखिये कि वह संसार के (जन्म मृत्यु जरा व्याधि आदि) सम्पूर्ण दुखों को तत्काल नाश कर देता है।

दण्डक वन प्रभु कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किय पावन॥
निशिचर निकर दलेउ रघुनन्दन।
नाम सकल कलि कलुष निकन्दन॥

श्रीराम जी ने तो दण्डक वन को ही पवित्र किया है किन्तु नाम ने अनेक जनों के मन रूपी वनों को पवित्र कर दिया। श्रीरघुनाथ जी ने राक्षसों के समूह का ही नाश किया है परन्तु नाम तो कलियुग के सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है।

शबरी गीध सुसेवकन, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुणगाथ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने शबरी, जटायु और श्रेष्ठ भक्तों को मोक्ष पद दिया है। किन्तु नामने तो असंख्य दुष्टों का उद्धार कर दिया जिसकी गुण गाथा वेद में प्रसिद्ध है।

राम सुकण्ठ विभीषण दोऊ, राखे शरण जान सब कोऊ।
नाम अनेक गरीब निवाजे, लोक वेद वर विरद विराजे॥

श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण इन दोनों को शरण में रक्खा यह बात सब ही जानते हैं। किन्तु नाम ने अनेक (अजामील गणिका आदि) गरीबों का उद्धार कर दिया जिनका सुन्दर यशलोक और वेद में प्रकट ही है।

राम भालु कपि कटक बटोरा, सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा।
नाम लेत भवसिन्धु सुखाही, करहु विचार सुजन मन माहीं॥

श्रीरघुनाथ जी ने रीछ और बन्दरों की सेना एकत्रित करके समुद्र का पुल बान्धने के लिये बहुत परिश्रम किया। किन्तु नाम-स्मरण करते ही संसार रूपी समुद्र सूख जाता है इसलिये सन्तजनों मन में विचार करिये।

राम सकुल रण रावण मारा, सीय सहित निजपुर पगधारा।
राजा राम अवध रजधानी, गावत गुण सुर मुनिवर बानी॥

रामचन्द्र जी ने रावण सहित कुटुम्ब को मारा और फिर सीता सहित अपनी नगरी में पग धरा। और राजा रामचन्द्र जी की अवध राजधानी है कि जिसके गुण देवता और मुनि लोग सुन्दर वाणी से गाते हैं।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीति बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती
फिरत सनेह मगन सुख अपने, नाम प्रसाद शोच नहीं सपने

और जो सेवक प्रीति से नाम का स्मरण करते हैं वे बिना परिश्रम बड़े बली मोह के दलको जीत लेते हैं। नामके प्रसाद से स्नेह में मग्न हुए अपने सुख में फिरते हैं (उनको) स्वप्ने में भी शोच नहीं रहता।

ब्रह्म रामते नाम बड़, वर दायक वर दान।
रामचरित शत कोटि में, लिय महेश जियजान॥

निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम से नाम बड़ा है, वर देने वाले ब्रह्मादिकों को भी वर देने वाला एवं महादेव जी ने सौ करोड़ रामायणों में से इसी राम नाम को सार तत्व जान कर हृदय में धारण किया है।

नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी, साज अमंगल मंगल राशी।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी, नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी

नाम के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल भेषधारी होने पर भी मंगलों की राशि हैं। शुक सनक आदि सिद्ध, मुनि और योगी नाम के प्रसाद से ब्रह्मानन्द का सुख भोगते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रताप्, जग प्रिय हरि हर हरि प्रिय आप्॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसाद्, भक्तशिरोमणि भे प्रहलाद्॥

नाम का प्रताप नारद जी ने जाना है, क्यों कि जगत के प्रिय जो शिवजी और विष्णु भगवान् हैं उन दोनों को नारद जी अत्यन्त प्यारे लगते हैं। नाम के जपते ही प्रभु ने प्रहलाद जी पर ऐसी कृपा की कि उन्हें भक्तों का शिरोमणि बना दिया।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनाम् पायउ अचल अनूपम ठाम्।
सुमिरि पवनसुत पावन नाम् अपने वश करि राखेउ राम्॥

ध्रुव ने सकाम भाव से भगवन्नाम का जाप किया तो भी अविनाशी और उपमा रहित स्थान पाया। हनूमान जी ने तो पवित्र नाम का स्मरण करके भगवान श्री रामचन्द्र जी को ही अपने वश में कर रक्खा है।

अपर अजामिल गज गणिका ऊ, भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ।
कहहुं कहां लगि नाम बड़ाई, राम न सकहि नाम गुण गाई॥

दूसरे अजामेल गज और गणिका जैसे पतित भी हरि नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये हैं। (वास्तव में तो भगवन्नाम की महिमा अकथनीय ही है इसी लिये गोस्वामी महाराज कहते हैं) कि मैं नाम की महिमा कहाँ तक वर्णन करूं जब कि स्वयं भगवान् राम भी नामस्मरण के गुणों को पूर्णतया नहीं गा सकते।

राम नामको कल्पतरु, कलि कल्याण निवास।
जो सुमिरत भये भांगते, तुलसी तुलसीदास॥

कलियुग में रामनाम रूपी कल्पवृक्ष कल्याण का स्थान है कि जिसके स्मरण करने से तुलसीदास भांग के समान अयोग्य वस्तु से तुलसी के पत्र के समान भगवान् का प्यारा हो गया।

अपूर्ण

भजन

सांवल पिया मोरी रंग दो चुनरिया॥ टेक॥
ऐसी रंग दो रंग नहिं छूटे।
धोबिया धोवे चाहे सारी उमरिया॥ १॥
जब दोगे तब लेके उठूँगी।
बीत जाये चाहे सारी उमरिया॥ २॥
या तो रंग दो या मोल मंगादो।
प्रेम नगर में लगी है बजरिया॥ ३॥

२

तुझे क्या खबर है मैं क्या देखता हूं।
मैं झुक २ के उसकी अदा देखता हूं॥ टेक॥
तू बुतखाने में मुझ को जाने दे जाहिल।
जरा ठैर अपना खुदा देखता हूं॥ १॥
खिंची दिल में तस्वीर उस सनम की।
मैं जब चाहूं गरदन झुका देखता हूं॥ २॥
मक़ाबे में क्या बुतकदे में भी जाहिर।
मैं उस को ही जलवेनुमा देखता हूं॥ ३॥
झुकाता हूं मैं शौक़ से अपनी गरदन।
जो खंजर कमर से जुदा देखता हूं॥ ४॥

३

हमें तेरे दीदार की आरजू है।
शबोरोज दिल में यही जुस्तजू है॥ टेक॥
हमारी यह हस्ती है तेरा यह पर्दा।
अगर नेस्त यह है तो फिर तू ही तू है॥१॥
निकल जाय दम तेरे कदमों के नीचे।
यही दिल की हसरत यही आरजू है॥२॥
गुलिस्तां में जाकर हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है॥३॥
नहीं मुझको भाती हैं बातें किसी की।
सुनी जब से उस यार की गुफ्तगू है॥४॥

समाया है नजरों में जब से तू मेरी।
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है ॥ ५ ॥
दिवाना समझ करके देते हो गाली।
जबां को सम्हालो यह क्या गुफ्तगू है ॥५॥
मिसरा-तू तो जिस खाक को चाहे बने बन्दा ऐ पाक।
मैं खुदा किसको बनाऊं जो खफा तू हो जाय ॥
मुझ में तू ऐसा समाजा कि मैं मैं न रहूं।
तुझ में मैं ऐसा समाऊं कि तू ही तू हो जाय ॥
हरम औ दैर के झगड़े तेरे छुपने से पड़े।
तू अगर पर्दा उठाले तो तू ही तू हो जाय ॥
यह है राज मरफी न कहना तू आजिज।
न यह है न वो है न मैं हूं न तू है ॥ ६ ॥

४

दूसरा कौन है जहां तू है।
कौन जाने तुझे कहां तू है ॥ टेक ॥
तू ही खिलवत में तू ही जलवत में।
कहीं पर पिन्हां कहीं अयां तू है ॥१॥
रंग तेरा चमन में बू तेरी गुल में।
खूब देखा तो बांगबां तू है ॥ २ ॥
जिस्म कहता है जान है तू ही।
जान कहती है जानेजां तू है ॥ ३ ॥
नहीं तेरे सिवा यहां कोई।
मेजबां तू है मेहमा तू है ॥ ४ ॥
महरमे राज तो बहोत हैं अमीर।
जिसको कहते हैं राजदां तू है ॥ ५ ॥

५

धुन रे धुनियां अपनी धुन धुन।
पराई धुनी का पाप न पुन धुन ॥ टेक ॥
तेरी रुई में चार बिनौले।
सब से पहले उनको चुन ॥ १ ॥
मिसरा-फकर बकरे ने किया मेरे सिवा कोई नहीं।
मैं ही मैं हूं इस जहां में दूसरा कोई नहीं ॥
जब न मैं मैं तरक की मगरूर के असबाब ने।
फेर दी जब जल के गरदन पै छुरी कस्साब ने ॥
गोश्त हड्डी और चमड़ा जो था जिस्मे जार में।
कुछ पका और कुछ पिसा कुछ लुट गया बाजार में ॥
रह गई आंते फकत मैं २ सुनाने के लिये।
ले गया नद्दाफ उन्हें धुन की बनाने के लिये ॥
जब से सोटे के जिसदम तांत घबराने लगी।
मैं के बदले फिर तुही तू की सदा आने लगी ॥
अच्छी तो तब धुन की जावे।
सगरी तांत बजे तुन तुन ॥ २ ॥
सांस का तन के ताना बाना ॥
जामये बहत तन पर बुन ॥ ३ ॥
मिसरा-न ढूंढो हक़को जमी पर न आस्मां ढूंढो,
खुदा को उसकी खुदाई के दरमियां ढूंढो।
यहीं ही होगा किसी गोशे में निहां होगा,
तलाश घर में करो अपना ही मकां ढूंढो ॥
दिखाई देता है जो चांद साफ मतले पर,
तुम अपनी आंखें जरा खोलो दरमियां ढूंढो।
तुम्हारे परदये दिल में है दिल रुबा मौजूद,
झुका के गर्दने तसलीम मेरी जां, ढूंढो ॥
तारे नफ्स को कस कर पहले।
अल्लाह की बजा तुन तुन ॥ ४ ॥

६

नाहिन रह्यो हिये में ठौर ॥
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और ॥
चलत, बितवत, दिवस, जागत, स्वप्न, सोवत रात।
हृदय ते वह श्याम मूरति छिन न इत उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधो लोक लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिन्धु समात ॥
श्याम गात सरोज-आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारण मरत लोचन प्यास ॥